सुशील कुमार

ज्वालामुखी के फूल

एक राजा चाहिए !
कठपुतली नहीं, एक वास्तविक राजा ।
जिसके राज्य में प्रजा को अधिक से अधिक
सुख मिले; कोई कष्ट न हो,
वही राजा है ।

आज से लगभग सवा दो हज़ार साल पहले—
मगध के भव्य राजप्रासादों से ठुकराया हुआ,
कुशों-काँटों और झाड़-झँखाड़ों से नुचा-चुथा,
लहू-लुहान एक कुरूप, काला ब्राह्मण नगरों और
वनों में भटकता फिर रहा है ।
उसकी आँखों से चिनगारियाँ छिटकती हैं—
ज्वालामुखी—काले रंग का विराट ज्वालामुखी

एक राजा चाहिए…
इसलिए नहीं कि वह विनाश का भूखा है ;
बल्कि इसलिए कि वह विनाश को निर्माण में बदलना चाहता है ।
निर्माण के लिए विनाश होता है, तो होने दो !

और एक दिन वह किशोर सामने पड़ गया—
मूर्तिमान् न्याय और शक्ति—
ऊँचा-पूरा व्यक्तित्व; गौरव से दमकता ललाट ;
वृषभ के-से उभरे कन्धे—
वृषल, ओ वृषल !

धधकते हुए ज्वालामुखी से तप्त लावे की जगह
फूल बरस उठे ।

के फूल

सुशील कुमार

राष्ट्रभाषा प्रकाशन
१५/२३, राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली

प्रथम परिच्छेद

१

उस दिन मगध की प्रजा ने आँख खोलते ही जो समाचार सुना, उससे केवल पाटलिपुत्र ही नहीं, सीमाओं के उस पार की राजधानियों में भी हलचल मच गई। सम्राट् महापद्म नन्द उग्रसेन ने महामात्य शकटार को पूरे परिवार सहित कारावास में डाल दिया।

मन्त्रि-परिषद् के कई सदस्य मूढ़ों की तरह रथों और घोड़ों पर बैठकर इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे। इस हलचल का सबसे बड़ा केन्द्र था अमात्य राक्षस का भवन। कितने ही लोग बाहर भीड़ लगाकर खड़े थे। सारे पाटलिपुत्र में रक्षकों और सैनिकों के दल सशस्त्र घूम रहे थे, तब भी प्रजा की हलचल कम नहीं थी। कई व्यक्ति बन्दी बना लिए गए, फिर भी कोई अन्तर न पड़ा।

अमात्य राक्षस के भवन में दक्षिण की ओर एक कक्ष था, जिसके बाहर कई विदेशी स्त्रियाँ और सैनिक पहरा दे रहे थे। भीतर अमात्य राक्षस, अमात्य कल्पक, दुरन्त, नागसेन आदि

कितने ही गिने-माने व्यक्ति बैठकर गम्भीरता से विचार कर रहे थे। अमात्य कल्पक ने कहा, "यह घोर अत्याचार है। आर्य शकटार जैसे महान् व्यक्ति को कारावास में डालने का अर्थ यह है कि सम्राट् की दृष्टि में किसी का भी कोई मूल्य नहीं है।"

कमरे में चारों ओर से गहरी साँसों के साथ-साथ हुंकार सुनाई पड़ा। नगरसेठ सुदत्त ने कहा, "यह सीमा है, इससे अधिक और क्या होगा ?"

अमात्य दुरन्त ने उनकी ओर देखकर व्यंग्य से हँसते हुए कहा, "हमें लज्जा आनी चाहिए। ऐसे अवसर पर भी हमारे नगरसेठ इतने धीमे स्वर और मधुर शब्दों में बोल रहे हैं।" फिर एक बार वहाँ बैठे हर व्यक्ति की ओर ध्यान से देखकर वह बोले, "तुरन्त ही निर्णय लेना है! प्रजा अपने प्रिय महामात्य के बन्दी बनाए जाने से इतनी दुखी है कि यदि उचित संकेत न मिले तो किसी भी क्षण विद्रोह हो सकता है। भयानक रक्तपात होगा।"

"और कोई आश्चर्य नहीं कि राजभवन को घेरकर खड़े विद्रोही किसी भी क्षण सैनिकों पर टूट पड़ें।" अमात्य कल्पक ने कहा।

थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। बाहर खड़ी भीड़ का कोलाहल यहाँ भी सुनाई पड़ रहा था। नगरसेठ के चेहरे पर घबराहट छा गई थी। उन्होंने इस प्रकार चारों ओर देखा, जैसे बचने की कोई राह खोज रहे हों, पर कोई चारा न था। वह सिर झुकाकर बैठे रहे।

इस बीच अमात्य राक्षस एक शब्द भी नहीं बोले थे। उनका गोरे रंग का शरीर जैसे सोने में तपाया हुआ था, पर इस समय उनका चेहरा तांबई हो गया था। बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों की लाली कुछ और बढ़ गई थी। होंठ दृढ़ता से सट गए थे। अधमुँदी

आँखों से जैसे तेज झर रहा हो। वह दीवार की ओर अपलक ताकते रहे, जैसे वहाँ भविष्य का कोई लेख पढ़ रहे हों।

सबकी आँखें उन्हीं पर लगी हुई थीं, पर वह निश्चल बैठे थे। अमात्य कल्पक ने नरम स्वर में कहा, "आर्य शकटार के बाद आर्य राक्षस ही हम सबसे ज्येष्ठ हैं। इस काण्ड के बाद सम्राट् ने भी आपको ही महामात्य नियुक्त किया है। इस समय आप ही हमें रास्ता दिखाएँ। कोई उपाय कीजिए, आर्य, नहीं तो महाविनाश होकर रहेगा।"

दुरन्त ने कठोर होकर कहा, "होना ही चाहिए। जिस राज्य में विद्वानों का आदर नहीं होता, जिस राज्य में महान् पुरुषों का अपमान किया जाता है, उसका विनाश होकर रहेगा। आर्य शकटार और आर्य राक्षस के ही प्रयत्नों से मगध का विशाल साम्राज्य खड़ा किया गया है और उस पर सम्राट् महापद्म नन्द का अधिकार है। उन्हीं के प्रताप से सम्राट् की वंदना 'भगवान परशुराम के समान क्षत्रियों का अन्त करने वाला' कहकर की जाती है। आज अपार धन के स्वामी होने के कारण सम्राट् को महापद्म कहा जाता है और विशाल पराक्रमी सेना होने के कारण उनकी उपाधि उग्रसेन है। मैं पूछता हूँ, उन्हें इस अपार वैभव और सेना का स्वामी किसने बनाया? आर्य शकटार ने और आर्य राक्षस ने!"

"और उन्हीं का इतना बड़ा अपमान! आज जो मगध के सम्राट् हैं, कल तक उन्हें शूद्र का पुत्र···नाई का बेटा कहा जाता था!" कल्पक ने नगरसेठ की ओर देखते हुए कहा, "आर्य सुदत्त साक्षी हैं, शिशुनाग वंश के अन्तिम सम्राट् कालाशोक की क्या दशा हुई थी! उनकी महारानी अनार्य गणिका थीं। उन्हीं का संकेत पाकर राजधानी पाटलिपुत्र की सीमा पर ही सम्राट् कालाशोक का सिर काट लिया गया। उनकी हत्या करने वाले

थे यही, आज के सम्राट् ! सत्य सत्य है। कौन नहीं जानता इसे !"

यह रहस्य वैसे तो रहस्य नहीं रह गया था, किन्तु आज तक इस प्रकार प्रकट रूप से इस बात को कहने का साहस किसी को नहीं हुआ था। सुनकर सारी सभा सन्नाटे में आ गई। वृद्ध सुदत्त उत्तेजना से थर-थर काँपने लगे। उन्होंने बढ़कर आर्य राक्षस के चरणों पर सिर रख दिया और विलाप-सा करते हुए बोले, "अब क्या होगा, आर्य, अब क्या होगा ?"

"जो होना चाहिए।" एक साथ कई स्वर हुंकार उठे।

"अर्थात् विनाश !" सहसा अमात्य राक्षस का भारी गम्भीर स्वर गूँज उठा। खड़े होकर कंधे पर पड़ा उत्तरीय सँभालते हुए सिर ऊँचा करके उन्होंने कहा, "विनाश कहना बहुत सरल होता है, पर इसका अर्थ उससे पूछो, जिसने निर्माण किया है। मुझसे पूछो, और विश्वास न हो तो बन्दीगृह में जाकर आर्य शकटार से पूछो। मुझे विश्वास है, वह भी यही कहेंगे कि किसी एक व्यक्ति का अपराध या किसी एक व्यक्ति का अपमान इतना बड़ा नहीं है कि उसका फल सारी प्रजा भुगते। हमने अपने खून से जिस देश को सँवारा है, वहाँ खून की नदी बहाने की अनुमति मैं कभी नहीं दूँगा।"

दुरन्त ने एकाएक खड़े होते कहा, "हम इसे सहन नहीं कर सकते।"

महामात्य राक्षस ने दृढ़ स्वर में कहा, "मैं सहन कर सकता हूँ।"

"आर्य राक्षस के मन में लोभ है।" दुरन्त बोला।

"है, पर पद का नहीं। लोभ है रक्षा का। इस देश के लिए, यहाँ की प्रजा के लिए मैं हर अपमान सह सकता हूँ। मेरे रहते निर्दोषों का खून नहीं बहेगा। मैं जानता हूँ, सम्राट् की सेना इस

विद्रोह को क्षण-भर में कुचल देगी। पता नहीं कितने लोग असहाय होकर भटकेंगे, भूखों मरेंगे, क्योंकि मैं यह भी जानता हूँ कि यह समय विद्रोह का नहीं। जो लोग सम्राट् को जानते हैं, उन्हें यह भी जानना चाहिए कि सम्राट् बिना अपनी शक्ति को परखे कोई भी काम नहीं करेंगे। अभिमान भी शक्ति पाकर ही होता है, इसलिए मैं मन्त्रि-परिषद् से अनुरोध करूँगा कि वह समय का साथ दे। कहीं ऐसा न हो कि अपनी ही क्रोध की आग में हम स्वयं ही जल मरें। हम प्रजा के हित के लिए हैं, हानि के लिए नहीं। आर्यगण विचार करके मुझे अनुमति दें।"

बड़ी देर तक चुप्पी छाई रही, फिर धीरे-धीरे फुसफुसाहट होने लगी।

अन्त में महामात्य राक्षस ने पूछा, "आर्यों ने निर्णय कर लिया होगा ?"

थोड़ी देर बाद अमात्य कल्पक उठ खड़े हुए ; बोले, "आर्य राक्षस धन्य हैं ! उन पर किसी को सन्देह नहीं। वह जो कुछ करेंगे, उचित ही करेंगे।"

मन्त्रि-परिषद् ने एक स्वर से कहा, "महामात्य राक्षस पर हमें विश्वास है।"

महामात्य ने तुरन्त ही आदेश दिया, "हर नगर और हर गाँव में घोषणा करवा दो कि महापराक्रमी सम्राट् महापद्म नन्द उग्रसेन ने जो कुछ भी किया है, प्रजा के हित के लिए किया है; इसके विरुद्ध बोलने वाला राजद्रोही होगा और उसे कठोर-से-कठोर दण्ड दिया जाएगा।"

मन्त्रि-परिषद् के सदस्य धीरे-धीरे विदा हो गए। कुछ देर बाद महामात्य राक्षस अटारी पर चढ़ गए। उन्होंने झरोखे से बाहर देखा—भीड़ अब भी खड़ी थी। अभी-अभी दुन्दुभी पीट-कर राजकर्मचारी ने घोषणा की थी, सम्भवतः इसीलिए वहाँ

सन्नाटा-सा छा गया।

इसी छोर पर एक व्यक्ति खड़ा हुआ लाल-लाल आँखें फाड़े जैसे प्रजा की सहमी हुई आँखों में कुछ पढ़ रहा था। एकदम काला शरीर। घुटा हुआ सिर। माथे पर लाल चन्दन। अधखुले होंठों के भीतर से उजले दाँतों की तीखी कौंध।

क्षण-भर के लिए उसकी आँखें महामात्य राक्षस की आँखों से टकराईं। महामात्य को उसका व्यक्तित्व अद्भुत लगा। एक बार सोचा, उसे बुलवाकर मिलें, पर उसने जैसे अवकाश ही नहीं दिया। एक बार हँसकर अपनी लाल-लाल आँखों की व्यंगभरी दृष्टि से उनकी ओर देखता हुआ वह पास ही खड़े सैनिक की ओर झुककर कुछ बोला और तुरन्त ही मुड़कर भीड़ में खो गया।

राक्षस ने देखा—सैनिक अवाक् खड़ा पता नहीं क्या सोच रहा है। उन्होंने तुरन्त दासी से सैनिक को बुलवाया।

"वह कौन था ?"

"मैं नहीं जानता।" सैनिक घबराकर बोला।

"क्या कह रहा था ?"

"देव···!" सैनिक के चेहरे पर भय की कालिख छा गई।

"निर्भय होकर कहो !"

सैनिक ने घुटनों के बल बैठकर भय से काँपते हुए बताया, "कह रहा था, 'तेरा राक्षस इस दम्भी राजा का विनाश कब तक रोकेगा'।"

महामात्य के माथे पर बल पड़ गए, फिर वह एकाएक हँस पड़े; बोले, "पागल है !"

१०

पाटलिपुत्र का कारावास। पच्छिम की ओर एक छोटी-सी कोठरी बनी है, जिसके चारों ओर पथरीली दीवारों का एक घेरा और है। इस भाग में न तो ठसाठस साधारण अपराधी भरे हुए हैं, न उनसे कठोर काम कराने का ही कोई प्रबन्ध है। आस-पास बात-बात पर कोड़े से पीटने वाले भयानक कर्मचारी भी यहाँ नहीं दिखाई पड़ते। चट्टानों की बनी हुई जरा बड़ी-सी कोठरी है। सामने पथरीली दीवारों से घिरा हुआ छोटा-सा आँगन भी है। द्वार पर दो सशस्त्र रक्षक हैं।

आँगन में घास पर एक व्यक्ति यों ही लेटा पड़ा आकाश की ओर देख रहा है, जैसे नक्षत्रों को देखकर उनके बदलने का अनुमान लगा रहा हो। रूखे बालों के साथ-साथ उसकी अधपकी दाढ़ी और मूँछों के बाल भी यों ही बिखरे हुए हैं। कौन जानता था कि अपने समय में संसार के सबसे शक्तिशाली सम्राट् के महामात्य शकटार एक दिन इस तरह मिट्टी में पड़े होंगे!

संध्या आई और धीरे-धीरे चली गई। शकटार उसी तरह

पड़े आकाश की ओर देखते रहे। रात घिरने लगी।

एकाएक आहट सुनकर वह उठ बैठे। उन्होंने द्वार की ओर देखा—आश्चर्य है ! अनहोनी घटना ! आज वर्षों से वह यहाँ पड़े हैं, पर आज तक कोई नहीं आया। आता ही कौन ? रह ही कौन गया है ? कारावास में परिवार-भर के भोजन के लिए थोड़ा-सा सत्तू मिलता था। उसे सामने रखकर शकटार कहते, "जो नन्द सम्राट् का नाश करके बदला चुकाए, वही सत्तू खाए।"

और सारा सत्तू वैसे ही रखा रह जाता था। भूख और प्यास से तड़प-तड़पकर उनके पुत्रों ने, फिर उनकी पत्नी ने भी प्राण दे दिए। पर शकटार आज भी जीवित हैं। नन्द से प्रतिशोध लेना ही है···

पर यह है कौन ?

द्वार से धीरे-धीरे भीतर आकर एक स्त्री ने झुककर प्रणाम किया।

शकटार खड़े हो गए। अचरज से बोले, "कौन है तू ?"

चेहरे पर से पट हटाकर स्त्री ने कहा, "मैं हूँ ! सम्राट् की दासी विचक्षणा। पहचानते हैं, आर्य ?"

"सम्राट् की दासी !" शकटार ने घृणा से होंठ सिकोड़कर कहा, "मेरे पास कुछ बचा रह गया है क्या ? अब सम्राट् किस बात के भूखे हैं ? बोल !"

हाथ जोड़कर दासी ने कहा, "शान्त हों, आर्य ! मेरी प्राण-रक्षा करें, इसीलिए आई हूँ।"

"प्राण-रक्षा ? मैं करूँ ? पगली !" शकटार कड़वी हँसी हँसकर बोले, "शकटार किसी के प्राण बचा सकता तो अपने बेटों को जीवित न बचा लेता ? मेरे रहते आर्या "

शकटार का गला भर आया, पर उन्होंने बरबस दाँतों से

होंठ काटकर अपने-आपको रोक लिया।

दासी ने झुककर उनके चरणों की धूल माथे से लगा ली; बोली, "मैं कुछ समझ नहीं पाती, आर्य, मेरे सिर पर मृत्यु की छाया है। मैं व्याकुल हूँ। अपराध क्षमा करें! मैं प्राण बचाने के लिए चारों ओर भाग रही हूँ। कहाँ नहीं गई! पर कोई उपाय नहीं सूझता···" वह फफक-फफककर रो पड़ी। कुछ देर वाद सिसकती हुई बोली, "मुझे चन्द्रगुप्त मौर्य की माँ आर्या मुरा ने आपकी शरण लेने की सुधि दिलाई। इतनी बड़ी बाधाओं को लाँघकर आखिर मैं आ ही गई हूँ। प्राण तो जाना ही है, पर बचाने के लिए छटपटा रही हूँ। स्वयं सम्राट् की मुद्रा चुराकर उसी के सहारे आपका दर्शन करने आई हूँ। प्राण की रक्षा के लिए एक और अपराध करते मुझे डर नहीं लगा, आर्य! दो प्राण तो हैं नहीं। एक है, वही तो जाएगा!"

"चन्द्र की माँ!" शकटार ने लम्बी साँस खींची। वह जैसे विचक्षणा की पूरी बात सुन ही न सके थे। उनका स्वर कुछ नरम पड़ गया। ठीक उन्हीं की तरह अकस्मात् ही चन्द्रगुप्त के पिता पर भी सम्राट् का कोप वज्र बनकर टूटा था। बेचारा कारागार में ही मर गया। चन्द्र और उसकी माँ अन्तिम समय में उसका मुँह भी न देखने पाए थे···

"तुझे क्या दुख है, दासी?" शकटार ने सहसा पूछा।

"मेरे प्राण···नहीं-नहीं, बताती हूँ···आज से एक माह पहले एक दिन दोपहर में सम्राट् के भोजन के समय मैं ही सेवा में नियुक्त थी। महाराज खाकर उठे तो मैं सोने के पात्र में जल लेकर हाथ धुलाने लगी। नन्हे-नन्हे छींटे उड़कर धरती पर गिरते और सूख जाते। सहसा महाराज हँस पड़े। और मैं···मेरी मृत्यु जो नाच रही थी, मैं भी हँस पड़ी···बस, सम्राट् ने तुरन्त ही पूछा—तू क्यों हँसती है?

"मैं क्या उत्तर देती ! खून सूख गया ।"

दासी फिर जोर-जोर से सिसक उठी । उसने किसी प्रकार बात पूरी की, "उन्होंने फिर कड़ककर कहा—उत्तर दे, तू क्यों हँसी ?

"मैंने डरते-डरते कहा—महाप्रभु की हँसी में ही प्रजा की हँसी है । महाप्रभु हँसे थे, इसी कारण दासी भी हँस पड़ी । यही प्रजा का धर्म है !

"सम्राट् मुस्कुरा पड़े ।" विचक्षणा फिर शकटार के पैर पकड़कर बिलख उठी, "आर्य, सम्राट् मुस्कुरा तो रहे थे, पर उनकी आँखों में जैसे मृत्यु की भयानक जीभ लपलपा रही हो । उन्होंने सिर हिलाकर कहा—तू बात करने में बड़ी चतुर है, विचक्षणा ! अच्छा, बता मैं क्यों हँसा ?"

दासी बेहाल होकर बोली, "आप ही कहें, आर्य ! भला कोई भी किसी के मन की बात कैसे बता सकता है ! मैं अचेत-सी होकर सम्राट् के चरणों पर लोट गई और प्राण की भिक्षा माँगने लगी, पर उन्होंने मुझे ठोकर मारकर कंचुकी लोमा को आज्ञा दी—विचक्षणा बड़ी ढीठ हो गई है, लोमा, यदि यह कल प्रात: तक आकर मुझे मेरे हँसने का कारण न बता सके तो इसे राजवन में जीवित ही भेज देना ! इसका गरम-गरम लहू पीकर मेरा सिंह दहाड़ उठेगा । इसका कोमल मांस···"

विचक्षणा मृत्यु के भय से हिलक-हिलककर रोने लगी ।

शकटार अब तक चुपचाप विचक्षणा की बातें सुन रहे थे । एकाएक आकाश की ओर देखते हुए बोले, "जिस देश का राजा ही लहू का प्यासा हो, उसकी प्रजा को जीने का अधिकार नहीं। तू मर क्यों नहीं जाती, दासी ?"

"मोह है, आर्य !" विचक्षणा बिलखकर बोली, "एक छोटा-सा शिशु है, उसके मोह के कारण मेरा प्राण छटपटा रहा है ।

फिर अपने प्राण का मोह भी तो कम नहीं होता ! किसी प्रकार सम्राट् ने एक माह का अवकाश दिया था। आज अन्तिम दिन है। कल उत्तर न दे सकी तो···"

शकटार पत्थर की तरह खड़े रहे। उनकी आँखों के सामने अपने छोटे-छोटे बच्चों की आँखें नाच उठीं। उन्हें कारावास में बन्द करवा के महापद्म नन्द ने···भूख और प्यास के कारण तड़पते हुए सुकुमार शरीर, पीले चेहरे और धीरे-धीरे पथराती आँखें · एक-एक करके सब कुछ शकटार की आँखों के आगे नाच उठा। इसी प्रकार क्या विचक्षणा का नन्हा-सा बच्चा भी दूध के बिना अकुलाकर छटपटाएगा और उसकी मोहक आँखें···

"तू नहीं मरेगी···नहीं मरेगी !" सहसा उन्होंने विचक्षणा के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा।

दासी को जैसे वरदान मिल गया। प्रसन्नता से विह्वल होकर उसने शकटार के चरण चूम लिए ; बोली, "मेरे प्राणों के रक्षक, तुम मेरे पिता के समान हो ! मेरे···"

सहसा वह रुक गई। अभी तो सब कुछ बाकी ही था। धीरे से बोली, "पर जब तक मैं सम्राट् के हँसने का कारण नहीं जान लेती···"

"वही तो · " शकटार ने कुछ सोचते हुए कहा, "अच्छा, तू एक बार फिर सारी स्थिति का वर्णन कर ! देख, ध्यान रहे, छोटी-से-छोटी बात भी भूलना मत ! कोई भी कण तेरा जीवन बचा सकता है !"

दासी सतर्क हो गई। उसने धीरे-धीरे फिर सारी घटना का वर्णन दुहरा दिया और उत्सुकता से शकटार की ओर ताकने लगी। उसकी आँखों में जीवन और मृत्यु के दीप जल-बुझ रहे थे।

कुछ देर सोचने के बाद शकटार ने सिर हिलाया, "ना···

कुछ नहीं। ऊँ···हुँ !"

दासी की आँखें भक् से बुझ गईं।

एकाएक शकटार ने पूछा, "अच्छा, उस दिन महाराज किस कक्ष में भोजन कर रहे थे ?"

"उस दिन मयूर का मांस बना था, इसलिए राजभवन के दक्षिण-पूर्व के कोने वाले कक्ष में ही भोजन का आयोजन किया गया था।"

"सम्राट् जब आँगन में हाथ धोने गए तो किस ओर मुँह करके खड़े थे ?"

"दक्षिण की ओर।" दासी ने सोचकर बताया, "मैं उनके दाईं ओर खड़ी होकर पानी डाल रही थी। मेरा मुख पूर्व की ओर था।"

सहसा उत्तेजित होकर शकटार ने पूछा, "उस समय दक्षिण में प्रमोदवन का द्वार खुला था, विचक्षणे ?"

दासी सोचने लगी।

शकटार अपलक दृष्टि से उसके चेहरे की ओर देख रहे थे, जैसे इसी उत्तर पर सब कुछ निर्भर था। उनके माथे पर बल पड़ गए थे।

"हाँ !"

और प्रसन्नता के कारण उमड़ते हुए भावावेग को रोकने के लिए शकटार दासी की हथेली दबाकर धीरे से फुसफुसाए, "और वहाँ प्रमोदवन का वह विशाल वटवृक्ष भी दिखाई पड़ रहा था न, विचक्षणा !"

शकटार ने इस तरह विनती-सी की जैसे दासी की 'हाँ' पर उनके अपने प्राण ही निर्भर हों।

दासी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा ही था कि आर्य शकटार हँस पड़े; बोले, "तू अभय हो, विचक्षणा ! देख, पूर्व में भोर की

उजास फूट रही है। यह तेरे जीवन का प्रतीक है ! जा, अपने सम्राट् के हँसने का कारण बता दे। छोटे-छोटे छींटों को हवा में उड़कर धरती में समा जाते देखकर सम्राट् को वटवृक्ष के बीजों की याद आ गई थी। कितने छोटे-छोटे बीज होते हैं, राई के दाने से भी छोटे ! उड़कर वह भी कहीं धूल में इसी तरह समा जाते हैं। पर वही नन्हा-सा बीज एक दिन बड़ा होकर इतना विशाल वटवृक्ष बन जाता है ! इसी बात पर महाराज हँस पड़े थे।"

दासी ने झुककर शकटार के पैर छुए। और जैसे छूटा हुआ प्राण फिर से पा गई हो, वह आँधी की तरह बाहर दौड़ पड़ी।

शकटार हँस पड़े। वह बड़ी देर तक वहीं खड़े-खड़े पूर्व की ओर देखते रहे, फिर मुट्ठी-भर धूल उठाकर उसी ओर उड़ा दी। उनके लिए कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं। सब मिट्टी है। सब कुछ। जीवन भी···मृत्यु भी···सब व्यर्थ···

3

मगध के महामात्य राक्षस की समस्या दिनों-दिन जटिल होती जा रही थी। सम्राट् को पता नहीं क्या हो गया है। उनका विवेक धोखा दे रहा है, मन का सन्तुलन बिगड़ता ही जा रहा है। प्रताप के कारण बढ़ते उनके दम्भ को सँभालना कठिन हो गया है। उन्होंने जब से कलिंग पर विजय प्राप्त की, तब से यह संकट और भी बढ़ गया। वह कलिंग से भगवान जिनेश्वर की सोने की मूर्ति उठवा लाए। सारा कलिंग इस अपमान की आग से झुलस उठा है। कलिंग की प्रजा इस अपमान को पीढ़ियों तक नहीं भूलेगी।

इधर सम्राट् की वह अभिमान-भरी घोषणा भी कम उकसाने वाली नहीं है—'परशुराम की तरह प्रतापी सम्राट् महापद्म नन्द ने धरती के क्षत्रियों का दर्प चूर-चूर कर दिया है!'

सम्राट् के पराक्रम में राक्षस को कोई सन्देह नहीं। पर किसी भी वीर का इस प्रकार विवेक खोकर अपने दम्भ में चूर हो जाना शत्रुओं की संख्या ही बढ़ाता है, मित्रों की नहीं।

महामात्य राक्षस चिन्ता में डूबे बैठे ही थे कि चर ने आकर सूचना दी, "सम्राट् ने अभी-अभी बुलवाया है।"

महामात्य तुरन्त रथ लेकर चल पड़े। सम्राट् उस समय प्रमोदवन में टहल रहे थे।

राक्षस ने पहुँचकर प्रणाम किया। उन्हें देखते ही सम्राट् ने कहा, "महामात्य, मैंने शकटार को कारावास से मुक्त करवा दिया; साथ ही मैंने उन्हें फिर राजसभा में पद दे दिया है।"

"पद ?" राक्षस चौंके।

"हाँ !" सम्राट ने कहा, "मगध का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति कारावास में रहे, यह शोभा नहीं देता।"

"सम्राट् का प्रसाद पाकर आर्य शकटार प्रसन्न होंगे, देव ! किन्तु···"

सम्राट् के चेहरे पर कुछ कठोर रेखाएँ उभर आईं। उनके निर्णय पर कोई भी किन्तु-परन्तु करे, यह मगध के सर्वशक्तिमान् सम्राट् कैसे सह सकते थे !

राक्षस ने तुरन्त कहा, "किन्तु उन्हें फिर से राज-परिषद् में पद देना उचित नहीं होगा, प्रभो !"

"क्या उचित नहीं होगा ! महापद्म नन्द जो कुछ करे, वही उचित होगा। हमारा निर्णय हमारा है !"

महामात्य सिर झुकाए खड़े रहे।

सहसा सम्राट् खिलखिलाकर हँस पड़े; बोले, "ओऽऽ हम समझ गए। शकटार के आने से महामात्य को डर लग रहा है कि कहीं फिर से वही महामात्य न बन जाएँ ! नहीं, इस बार आप महामात्य रहेंगे और शकटार आपके अधीन रहकर आपकी सहायता करेंगे।"

मन-ही-मन राक्षस काँप उठे। उनकी भावनाओं का अब इतना ही मूल्य रह गया है ! उनकी बातों का यही अर्थ निकाला

जाएगा कि वह अपने पद की रक्षा के लिए डर रहे हैं। वह खिन्न मन से चुपचाप खड़े रहे।

सम्राट् ने कहा, "आर्य राक्षस अब सन्तुष्ट होंगे !"

उनके स्वर में व्यंग्य था। एक बार उनकी ओर आँख उठाकर देखने पर महामात्य स्तब्ध रह गए। सम्राट् के सारे चेहरे पर व्यंग की रेखाओं की तीखी धार-सी उभर आई थी। दूसरे ही क्षण कठोर स्वर सुनाई पड़ा, "आज्ञा का पालन किया जाए !"

प्रणाम करके भी महामात्य वहीं खड़े रह गए; हटे नहीं। सम्राट् ने एकाएक कहा, "लगता है, अभी तक महामात्य के मन में कोई शंका शेष है !"

"हाँ, देव !" राक्षस ने कहा, "अपराध क्षमा हो, जिस दिन मगध की धरती और मगध के राजा को आवश्यकता होगी, मैं अपना सिर भी चढ़ा दूँगा, पद तो छोटी बात है। उसकी मुझे चिन्ता नहीं। यदि आज्ञा हो तो···"

"तुम पर हमें पूरा विश्वास है।" सम्राट् कुछ नरम पड़े। पास ही रखे स्फटिक के सुन्दर आसन पर बैठकर सरोवर में तैरते कमल को छूते हुए बोले, "कहो, महामात्य !"

"प्रभो, मगध में ही नहीं, पृथ्वी के छोर-छोर तक अब मगध-सम्राट् का ही निर्णय चलता है। आपके प्रताप से धरती का कौन-सा छोर नहीं आतंकित है ! पर मेरा कर्त्तव्य है, उचित-अनुचित को सामने रख देना···"

"अच्छा !" सम्राट् कुछ चिढ़-से गए, "उचित क्या है, बताइए !"

महामात्य राक्षस ने निर्भीक स्वर से कहा, "शकटार की मुक्ति संसार का सबसे पहला उचित कार्य है, उन पर सम्राट् की कृपा हुई। पर राजनीति कितनी निर्मम है, यह सम्राट् से छिपा नहीं। एक दिन आपके कोप के कारण ही शकटार के कुल

का जड़ से विनाश हो गया। उनके मन में यह आग सुलगती ही रहेगी। इसी कारण उन्हें फिर से राज-परिषद् में अधिकार देना...” वाक्य पूरा न करके राक्षस ने सम्राट् की ओर दृष्टि डालकर कहा, “कौन जाने, कब अवसर पाकर उनके मन में सुलगती आग भड़क उठे और...”

कुछ देर चुप्पी छाई रही। फिर एकाएक उठकर सम्राट् ने कन्धे से गिरकर उड़ता हुआ उत्तरीय सँभालकर एक झटके से बाँह पर लपेट लिया और जाते हुए उपेक्षा के साथ बोले, “आज्ञा का पालन किया जाए !”

पत्थर की मूर्ति की तरह वहीं खड़े-खड़े आर्य राक्षस देर तक उसी द्वार की ओर देखते रहे, जिधर से अभी-अभी सम्राट् ओझल हो गए थे। फिर उन्होंने एक गहरी साँस खींची।

दूसरे ही क्षण उनका संकेत पाकर एक चर पास आ खड़ा हुआ। अपनी मुद्रा उसे देकर उन्होंने कहा, “आर्य शकटार को मुक्त करके उन्हें सुन्दर वेश-भूषा में सम्मान के साथ राजसभा में उपस्थित किया जाए !”

वह जाने लगा तो अचानक ही राक्षस ने बुला लिया; बोले, “हाँ, सुनो, दासी विचक्षणा को यहीं भेजते जाओ !”

वह पास ही सरोवर के एकदम पास रखी स्फटिक की शिला पर उठँग गए। चिन्ता और अपमान के कारण उनका माथा फटा-सा जा रहा था। उन्होंने आँखें मूँद लीं।

कुछ देर बाद आहट सुनकर उन्होंने आँखें खोलीं। सामने खड़ी विचक्षणा प्रणाम कर रही थी। महामात्य ने सहसा पूछा, “तू कारावास में शकटार से कैसे मिली ?”

भय से विचक्षणा की जीभ तालू से सट गई। उसका चेहरा पीला पड़ गया। महामात्य ने हँसकर कहा, “डर मत ! मैं जानता हूँ, तूने अवसर देखकर प्राण बचाने के लिए सम्राट् की

मुद्रा चुरा ली होगी। पर आज तूने आर्य शकटार का नाम लेने से पहले सोचा नहीं कि सम्राट् यह भी पूछ सकते थे, जो मैं पूछ रहा हूँ ? बिना उनकी आज्ञा के उस कारावास में मनुष्य तो दूर एक चींटी का भी प्रवेश कठिन है !"

दासी ने कहा, "आर्य शकटार का नाम न लेने पर भी तो जान जाती ही, देव !"

महामात्य राक्षस कुछ देर चुपचाप सोचते रहे, फिर बोले, "अच्छा, सम्राट् को आज भले ही यह बात भूल गई हो, पर किसी भी क्षण याद आ सकती है। और उन्हें याद आ गई तो जानती है, क्या होगा ?"

विचक्षणा सिर से पाँव तक काँप उठी। वह सिर थामकर धरती पर बैठ गई।

महामात्य ने कहा, "तेरे प्राण अब भी सुरक्षित नहीं हैं। इसका कुछ उपाय सोचा तूने ?"

दासी सूनी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

"नहीं न ?" महामात्य हँसे। कुछ देर बाद बोले, "मैं कर सकता हूँ इसका उपाय, पर तुझे एक वचन देना होगा।"

"वचन ?" विचक्षणा घबराकर बोली। महामात्य दासी से वचन माँग रहे हैं, यह बात भी विचक्षणा के लिए मृत्यु से कम भयानक नहीं थी।

"हाँ !" महामात्य राक्षस ने कहा, "उपाय यह है कि तुझे सम्राट् की आँखों के सामने से दूर कर दिया जाए, फिर वह तेरे सम्बन्ध में सोचेंगे भी नहीं।" क्षण-भर तक राक्षस की तीखी दृष्टि दासी की आँखों में धँसी-सी रही, फिर उन्होंने कहा, "मैं तुझे वहाँ से हटाकर अमात्य शकटार के यहाँ नियुक्त कर दूँगा। पर तुझे वचन देना होगा कि वहाँ की सारी सूचनाएँ मुझे मिलती रहेंगी। गोपनीय से गोपनीय सूचना भी !"

दासी का काँपता हुआ शरीर धीरे-धीरे स्थिर हो गया।

महामात्य राक्षस ने सोचा, सम्भवतः मृत्यु के भय से मुक्ति मिलने का उपाय देखकर ही वह कुछ स्थिर हो गई है।

"क्षमा करें, आर्य !" दासी ने धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में कहा, "अमात्य शकटार की कृपा से ही मेरी जान बची है, अब उन्हीं के साथ विश्वासघात···इससे तो मृत्यु ही अच्छी है !"

राक्षस उसकी ओर देखते ही रह गए। किसी दासी में यह निष्ठा देखने की वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे। जिसके पास ऐसी दासी हो, वह एक हजार बाधाओं पर सहज ही विजय पा सकता है। पर आज ऐसी दासी को वह पुरस्कार न देकर मृत्यु की धमकी ही दे सकते हैं—इस विडम्बना पर महामात्य को ग्लानि हुई। वह उठते हुए बोले, "तो सोच ले, कहीं ऐसा न हो कि लोमा को विवश होकर तुझे राजवन के हिंस्र जन्तुओं के सामने फेंकना ही पड़े !"

क्षण-भर विचक्षणा पथराई आँखों से उन्हें ताकती रह गई। जैसे उलाहना दे रही हो कि मैं विश्वासघात नहीं करना चाहती, उसका भी दण्ड आप जैसे उदार, महान् अमात्य की दृष्टि में मृत्यु ही है ! महामात्य ने कुछ नरम पड़कर कहा, "और अमात्य शकटार का दिया हुआ जीवन किसी भी क्षण जा सकता है, विचक्षणा ! लेकिन मेरा दिया हुआ जीवन···"

विचक्षणा झुककर बोली, "मुझे स्वीकार है, आर्य !"

महामात्य को लगा, जैसे उनके चरणों को छूने वाली दासी की हर अँगुली टपक रही है। उसकी सिहरन का अर्थ राक्षस की आँखों से छिपा नहीं रहा, पर आज तो वह उसका मूल्य दे ही नहीं सकते। नहीं, वह मनुष्य नहीं हैं—एक राज्य के महामात्य-भर हैं। बस !

उसे अकेली छोड़कर वह राजसभा की ओर बढ़ गए।

४

इस एक सप्ताह में ऐसी विचित्र घटनाएँ हुईं कि अमात्य शकटार जैसे नीतिज्ञ भी विस्मित रह गए। कहाँ तो वह सोच रहे थे कि यदि दासी विचक्षणा जरा भी डगमगा गई तो उसके साथ-साथ उनका भी प्राणदण्ड निश्चित था। भूल से भी यदि उसने सम्राट् के सामने उनका नाम ले लिया तो वह शायद विचक्षणा को अपने सामने ही भूखे कुत्तों से नुचवा देंगे, साथ ही कारावास के पहरेदारों को भी सपरिवार नष्ट कर देंगे।

किन्तु पता नहीं क्या हुआ, उन्हें सहसा कारावास से मुक्ति और उपमहामात्य के रूप में नियुक्ति का आज्ञापत्र एक साथ ही मिला। संयोग भी कितना विचित्र होता है ! आदेश सुनकर वह पथराए-से खड़े पूर्व के आकाश की ओर ताकते रह गए। भोर का तारा परसों की तरह आज भी चमक रहा था और उजास धीरे-धीरे फूट रही थी।

फिर उन्हें सोचने का अवकाश नहीं मिला। आदर सहित उन्हें नहला-धुलाकर राजसी वस्त्र पहनाए गए और चार घोड़ों

के रथ पर बैठाकर सम्राट् के सामने ले जाया गया। कैसा विचित्र दृश्य था ! उनके प्रवेश करते ही सम्राट् उठ खड़े हुए; बोले, "साम्राज्य के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति अमात्य शकटार का स्वागत है !"

मन्त्रि-परिषद् ने भी उठकर महामात्य राक्षस के साथ उनका अभिनन्दन किया।

आर्य शकटार को सहसा वर्षों पहले के दिन याद आ गए और उनकी आँखों से झर-झर आँसू बरसने लगे। कण्ठ रुँध गया। उत्तर में वह एक शब्द भी न कह सके। महामात्य राक्षस ने ही निवेदन किया, "सम्राट् का कल्याण हो ! आर्य शकटार को विश्राम की आवश्यकता है।"

महाराज ने तुरन्त उन्हें अनुमति दी। महामात्य राक्षस स्वयं अपने रथ पर लेकर उन्हें उनके भवन तक पहुँचाने गए।

सारा प्रबन्ध करके लौटते समय राक्षस ने कहा, "मगध-सम्राट् ने दुर्भाग्यवश आपको बड़ा कष्ट दिया। पता नहीं, अपने इस कार्य द्वारा वह अपने पाप को धो सके या नहीं, पर आपने भी उनके कल्याण का आशीर्वाद नहीं दिया है।"

राक्षस की चतुरता पर शकटार हँसे; बोले, "जहाँ आप जैसा कुशल व्यक्ति हो, वहाँ कल्याण-ही-कल्याण है, महामात्य ! और मेरा कल्याण भी प्रजा के कल्याण में ही है।"

राक्षस ने सिर झुकाकर नम्रता से कहा, "आप उदार हैं, राजा का स्वभाव आपसे अधिक कौन जानता है !"

"आप निश्चिन्त रहें, आर्य राक्षस ! अपने बाद शासन का सूत्र आपके हाथों में देखकर मुझे सुख ही हुआ है। अब मैं वृद्ध भी हो रहा हूँ। उतना भार सहन करने का बल मुझ में नहीं है।"

संतुष्ट होकर महामात्य राक्षस चले गए।

बैठे-बैठे अधिक दिन नहीं बीत सकते थे। एक सप्ताह बाद ही आर्य शकटार राजसभा में जाने लगे। उन्होंने राज-काज सँभाल लिया। उनकी तत्परता और निष्ठा देखकर सभी प्रसन्न हुए। महामात्य को लगा कि कुछ भी हो, आर्य शकटार ने सम्भवतः अपने कुल का नाश भुलाकर प्रजा के हित के लिए राजा को क्षमा ही कर दिया है। फिर भी वह निश्शंक नहीं हुए। आर्य शकटार की सेवा में नियुक्त दासी विचक्षणा के रूप में उनकी आँखें हर क्षण आर्य शकटार पर लगी रहती थीं।

दिन-रात का बहुत बड़ा भाग राज-काज में ही निकल जाता। विश्राम के लिए आधी रात के बाद के कुछ घंटे ही बचते थे, पर आर्य शकटार ही जानते थे कि वे क्षण कितने भयानक होते हैं। उन्हें पल-भर को भी नींद नहीं पड़ती थी। वर्षों से कारावास में पड़े-पड़े वह जिस प्रकार रात-भर आकाश की ओर देखा करते, उसी तरह आज भी अपने आँगन में स्फटिक शिला पर लेटकर आकाश की ओर ताकते रहते। सप्तर्षि के सातों तारों को सैकड़ों बार गिनते, कभी इस छोर से, कभी उस छोर से। कभी इस तारे से आरम्भ करके, कभी उस तारे से। पागलों की तरह अकेले ही बुदबुदाया करते, "कहाँ गया वह ? कहाँ पिछड़ गया ?"

वह···वह···अर्थात् आठवाँ बेटा।

उन्हें अच्छी तरह याद है। भूख और प्यास से तड़प-तड़पकर आठों बेटों ने दम तोड़ दिया था। महापद्म नन्द उग्रसेन के क्रोध की आग में झुलसकर वे सब जल गए थे। उनमें से सात ही क्यों दिखाई पड़ते हैं ? आठवाँ बेटा कहाँ है ?

शायद मगध के उपमहामात्य शकटार की यही नींद थी। आँखें खुलते ही उन्हें सामने विचक्षणा खड़ी दिखाई पड़ती। सोने के पात्र में सुगंधित जल लेकर वह चरणों के पास आकर प्रणाम

करती और धीरे से कहती, "नया प्रभात शुभ हो, आर्य !"

और आर्य शकटार का दिन प्रारम्भ हो जाता। बारह प्रहर का दिन। इन बारह पहरों में आर्य शकटार इस तरह डूब जाते जैसे उनका और कोई इतिहास नहीं है। उनका कोई अतीत नहीं है। वह हैं और मगध की प्रजा है; और कोई नहीं, कुछ भी नहीं। इसी में खोकर वह जीवित रहते।

मगध के सम्राट् अपने मनोरंजन के लिए बहुत कुछ ऐसा भी करते थे, जिसे सुनकर देश-विदेश के पराक्रमी राजा भी थरथरा उठते। उन्हें अपने कुत्तों के साथ सिंह का युद्ध देखने का भी शौक था। और इसके लिए अवसर मिलने पर वे घने जंगलों में स्वयं जाकर आखेट खेलते तथा सिंहों को जीवित पकड़ने के लिए अपार पुरस्कारों की घोषणा करते।

इन दिनों सम्राट् लगभग दो मास से सिंहों का आखेट करते फिर रहे थे। लौटे तो सत्ताईस जीवित सिंह पकड़कर साथ लाए। इस अभियान में उन्होंने कितनी ही बार दुस्साहस का परिचय दिया। साथ के बड़े-बड़े सेनापतियों, अंगरक्षकों तथा प्रसिद्ध आखेटकों और नन्द-राजकुमारों को पीछे छोड़कर वह स्वयं ही कूद पड़ते। पता नहीं कितनी बार मृत्यु का भयानक पंजा उन्हें दबोचते-दबोचते रह गया। उनके सकुशल लौट आने की प्रसन्नता में महारानी ने शक्ति-पूजन तथा दान का आयोजन किया था।

सम्राज्ञी ने बड़ी कठिनाई से उन्हें ब्राह्मणों को दान देने के लिए तैयार किया। परशुराम जैसे पराक्रमी ब्राह्मण के समान क्षत्रियों का अन्त करने वाले प्रतापी शूद्र सम्राट् महारानी और महामात्य की चतुरता के कारण ब्राह्मण की पूजा करने के लिए तत्पर हो गए। समारोह की तैयारियाँ होने लगीं। नगर सजाया जाने लगा। कल प्रातः महाराज दान देंगे।

साँझ को रथ पर बैठकर अपने हाथों ही रास सँभाले हुए अमात्य शकटार समारोह की तैयारी देखने के लिए निकल पड़े। बड़ी देर तक इधर-उधर घूमते रहने के बाद पता नहीं क्यों मन विरक्त हो गया। उन्होंने रथ बाहर की ओर मोड़ दिया। अंगरक्षकों को पहले ही रोक दिया था। उन्हें नगर के द्वार से अकेले ही बाहर जाते देखकर कई सैनिक घोड़ों पर चढ़कर पीछे-पीछे चल पड़े, पर शकटार ने उन्हें भी रोक दिया।

पता नहीं कितने दिन बाद, कई वर्ष बाद, वह नगर से बाहर प्रकृति की रंगभूमि में अकेले ही चले जा रहे थे। दूर पर दिखाई पड़ते जंगल की उस सीमा को छूकर ही लौटेंगे। सीमा पर खड़े पलाश के पेड़ों के बीच बच्चों की तरह घूम-घूमकर दौड़ने का मन हो आया। वहाँ जाकर एक बार वह पाटलिपुत्र की ओर देखेंगे। पाटलिपुत्र यहाँ पहले भी था, पर इसे धरती की शोभा आर्य शकटार ने बनाया है। यहाँ बैठकर नाश और निर्माण का दम्भ करने वाला राजा पद्म नन्द जब कुछ भी नहीं था, तब आर्य शकटार ने उसके सिर पर आठ रत्नों से जड़ा हुआ सोने का मुकुट रखा था। कल निरंकुश महापद्म नन्द उसी मुकुट को धारण करके दान देंगे और राजसभा के एक कोने में बैठे हुए आर्य शकटार उनके मुकुट में जड़े आठों रत्नों की चमक में अपने आठों बेटों की आँखों की पथराई चमक देखेंगे!

"कौन है?" आर्य शकटार सहसा रुककर पूछ बैठे। थोड़ी ही दूर पर एक व्यक्ति झुका हुआ कुछ कर रहा था।

"विनाश!" क्रोध से भभकते रूखे स्वर में उत्तर मिला।

शकटार समझ गए कि वह व्यक्ति उन्हें पहचानता नहीं। पिछले कई वर्षों में पता नहीं कितने लोग उन्हें भूल गए होंगे। रथ रोककर वह नीचे उतर पड़े। धीरे-धीरे पास जा खड़े हुए। काला, नाटा-सा कुरूप व्यक्ति! शरीर पर हाड़-मांस का

आवरण कुछ भी नहीं था, फिर भी पता नहीं क्यों, देखते ही डर लगता। शकटार ने आश्चर्य से देखा, वह नीचे झुका हुआ कुशों को उखाड़कर जड़ में कुछ उँड़ेल देता था।

"कुशों को सींच रहे हो ? कर्मकाण्डी ब्राह्मण लगते हो।" शकटार ने एकदम पास पहुँचकर कहा।

वह चौंक पड़ा ; बोला, "नहीं ! ब्राह्मण हूँ, पर कर्मठ हूँ। इन्हें सींच नहीं रहा हूँ, इनका समूल नाश कर रहा हूँ। इनकी जड़ों में मट्ठा डाल रहा हूँ, जिससे कभी पनप भी न सकें।"

"यह कैसा कर्म है !" शकटार चकित रह गए, "इसके लिए तुम्हें कोई पुरस्कार मिलता है ?"

कुशों को उखाड़कर उनकी जड़ों में मट्ठा डालते-डालते ही उस व्यक्ति ने कहा, "संसार का हर कार्य पुरस्कार के लिए ही तो नहीं होता ! वर्षों तक श्रम करके अनेक विद्याओं में पारंगत होने के बाद मैं कितनी आशाएँ लेकर अपने विवाह के लिए इधर आ रहा था। इन्हीं कुशों के वंश का एक तिनका पाँवों में चुभ गया। उसी के कारण मैं ठीक समय पर न पहुँच पाया। विफल रहा। इनका समूल नाश करके मैं इन्हें सदा-सदा के लिए रास्ते से हटा दूँगा !"

जोर लगाकर अन्तिम कुश को उखाड़ने के लिए वह रुका। एक झटके से पौधा उखड़ गया। उसकी जड़ में सारा मट्ठा उँड़ेलते हुए वह बोला, "जो व्यक्ति अपने शत्रु का या बाधा का समूल नाश नहीं कर देता, वह अपने ही नाश का उपाय करता है।"

शकटार स्तब्ध रह गए। मगध सम्राट् नन्द ने उनका समूल नाश नहीं किया।...पर क्या वह नन्दराज का विनाश कर सकेंगे ? प्रतिशोध की आग से शकटार का हृदय धधक उठा। नन्द वंश का नाश किए बिना उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी। पर

बुद्धिमानों को अपने से अधिक सामर्थ्य का काम करने के लिए और भी शक्ति जुटा लेनी चाहिए। ठीक उसी प्रकार, जैसे यह ब्राह्मण मट्ठे का सहारा ले रहा है।

उन्होंने क्षण-भर सोचकर कहा, "आर्य, इतना श्रम करने से अच्छा तो यह था कि पाँवों में उपानह पहन लेते !"

ब्राह्मण हँस पड़ा, "नहीं ! इनका नाश तो करना ही था। अपने अकेले के लिए ही नहीं, उन सबके लिए जो मेरी तरह बिना उपानह के ही इस पथ पर चलते हैं। और उपानह के लिए धन भी तो चाहिए ! मैं निर्धन हूँ।"

ब्राह्मण सीधा खड़ा हो गया। उसने पहली बार शकटार पर दृष्टि डाली। कुछ देर तक उन्हें ऊपर से नीचे तक देखता रहा, फिर रथ की ओर। वह सन्देहभरे स्वर में बोला, "कौन हो तुम ? राजपुरुष लगते हो !"

धीरे से हँसकर शकटार ने कहा, "अभाग्य से वही हूँ।"

"अभाग्य ? ऐसा क्यों ? मगध साम्राज्य में ऊँचा पद प्राप्त करना कोई दुर्भाग्य तो नहीं है ?"

"मेरे लिए तो दुर्भाग्य ही है, आर्य ! इसी राजभक्ति के कारण सब कुछ खो बैठा; स्त्री, पुत्र, धन-वैभव, यश-कीर्ति··· सब कुछ !"

ब्राह्मण की लाल आँखों में उत्सुकता चमक उठी ; बोला, "आप कौन हैं ?"

"मगध का नया उपमहामात्य !"

"अमात्य शकटार !" ब्राह्मण आश्चर्य से दो पग पीछे हटकर प्रणाम करते हुए बोला, "विष्णुगुप्त चाणक्य का प्रणाम स्वीकार हो, आर्य !"

शकटार ने बढ़कर चाणक्य को गले से लगा लिया ; बोले, "तू ब्राह्मण है, चाणक्य ! यह प्रणाम क्यों ?"
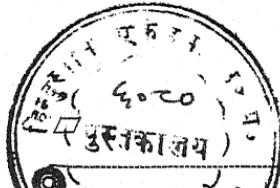
चाणक्य ने कहा, "ब्राह्मण चाणक्य शूद्र शकटार को भले ही प्रणाम न करे, पर कूटनीति का विद्यार्थी होकर भी क्या मैं आप जैसे महान् राजनीतिज्ञ को प्रणाम नहीं कर सकता ?"

प्रसन्न होकर शकटार ने कहा, "मैं तेरे वंश का आदर करता हूँ। तेरी प्रतिभा की प्रशंसा भी सुन चुका हूँ। तुझ जैसा पण्डित इतना निर्धन हो, यह अपमान है। चल, मेरे साथ चल !"

"कहाँ ?" चाणक्य हिचकिचाया ; बोला, "मैं दासता नहीं कर सकता..."

"दासता ? तुझे किसी की सेवा नहीं करनी होगी। सम्राट् कल प्रातःकाल दान करेंगे। मुझ पर ही सुपात्र ढूँढ़कर लाने का बोझ है। तुझसे बढ़कर अच्छा पात्र कौन मिलेगा ! आ, चाणक्य ! मेरे स्नेह का आदर कर !"

चाणक्य खड़ा सोचता रहा।

"तू चल !" शकटार ने कहा, "मैं पाटलिपुत्र में तेरे लिए एक विद्यालय खोल दूंगा। दासता नहीं करनी होगी तुझे !"

विवश होकर चाणक्य वृद्ध शकटार को कोई उत्तर नहीं दे सका और चुपचाप उनके साथ-साथ रथ पर आ बैठा।

५

पाटलिपुत्र आज सचमुच कुसुमपुर लग रहा था। राजधानी का श्रृंगार फूलों ही फूलों से किया गया था। लगभग बीचों-बीच बना राजभवन कलाकारों के श्रम से जगमगा उठा था।

दानशाला में बैठकर आज प्रतापी मगध सम्राट् महारानी के साथ दान करेंगे। उस समय उनका दर्शन करने के लिए नगर तथा राज-सभा के गिने-माने व्यक्ति आ पहुँचे। शाला की सजावट अनूठे ढंग से की गई थी। नन्दराज को सुन्दरता से अपार मोह है। उनकी रुचि का ध्यान रखकर ही कलाकारों ने सारी शाला को फूलों से ही सजाकर कमल के आकार का बना दिया था। सम्राट्, महारानी तथा दान लेने वाले ब्राह्मण के लिए रखे आसन भी कमल के समान दिखाई पड़ते थे।

यवन देश की सुन्दर कंचुकी सम्राट् और महारानी को मार्ग दिखाती हुई शाला में आई और कमल की आकृति में बने पथ पर धीरे-धीरे उन्हें आसन की ओर ले चली।

चारों ओर अंगरक्षक खड़े थे। उनके बाद दर्शन करने के

लिए आए नागरिक और राजपुरुष खड़े थे। भीतर आते ही प्रजा ने जयजयकार से उनका स्वागत किया; फिर शान्त होकर उत्सव का सुखद दृश्य देखने लगी।

साथ-साथ चलते हुए नन्दराज ने मुस्कराकर महारानी से कहा, "मैं बहुत प्रसन्न हूँ, देवि! इतने सुन्दर उत्सव की मैंने कल्पना भी न की थी। शाला को सजाने वाले कलाकारों को पुरस्कार दिया जाए।"

"देव की कृपा है।" महारानी ने आँखें झुकाकर मुस्कराते हुए कहा, "और मेरा सौभाग्य!"

"सचमुच, सुन्दर वस्तुओं को देखते ही मेरा हृदय खिल जाता है। मैं चाहता हूँ, मेरे राज्य का ही नहीं, सारी धरती का एक-एक कण सुन्दर हो जाए। सुन्दरता ही तो कल्याण है, यही सुख है!"

आसन पर बैठाते हुए परिचारिका ने कहा, "सुपात्र को दान करके देव पुण्य प्राप्त करें!"

उसने सामने वाले आसन की ओर संकेत किया। उस ओर दृष्टि पड़ते ही नन्दराज चौंक उठे। फिर सहसा क्रोध से काँप-कर वह गरज उठे, "इस नीच, कुरूप को यहाँ क्यों बैठा रखा है? इसे मेरी आँखों के आगे से दूर करो! इस पिशाच के केश पकड़कर बाहर निकाल दो!"

पल-भर तक भयानक सन्नाटा छाया रहा।

सामने आसन पर बैठे काले, कुरूप व्यक्ति की लाल आँखें अंगारों की भाँति दहक उठीं। उसने एक बार भयंकर दृष्टि से चारों ओर देखा, फिर लम्बी साँस छोड़ी जैसे क्रुद्ध नाग फुफकार उठा हो। और सहसा वह उछलकर खड़ा हो गया। सम्राट् की ओर अपनी धार की तरह पैनी दृष्टि से घूरता हुआ बोला, "अरे, दम्भी, शूद्र! तू अपने बल-वैभव और विलासिता के कारण अंधा

हो गया है। तूने अपने-आप निमन्त्रण भेजकर बुलाए हुए ब्राह्मण अतिथि का अपमान किया है !" उसने सहसा अपने सिर पर बँधी शिखा खोलकर झटक दी। ऐंठी हुई लम्बी मोटी शिखा नागिन की तरह लहरा उठी।

क्रोध से काँपते ब्राह्मण ने गम्भीर स्वर में कहा, "मैं विष्णुगुप्त चाणक्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक नन्दों का समूल नाश नहीं कर दूँगा, तब तक फिर से शिखा नहीं बाँधूँगा !"

और दूसरे ही क्षण आसन से उतरकर वह फूलों से सजाए पथ को रौंदता हुआ आँधी की तरह बाहर निकल गया।

परशुराम की तरह क्षत्रियों का नाश करके अपार धन और विशाल साम्राज्य के स्वामी बनने वाले नन्दराज की भरी हुई सभा में मौत का सन्नाटा छा गया। महापराक्रमी नन्द क्या नहीं कर सकते ! उनकी भौंहें टेढ़ी हो जाएँ तो प्रलय आ जाए। पर यह काला-सा तुच्छ, कुरूप ब्राह्मण उनका अपमान कर गया ! इस प्रकार भयानक शाप देकर चला गया !

हर व्यक्ति पत्थर की तरह जड़ हो गया था। सम्राट् की ओर आँख उठाकर देखने का साहस किसी में न था—लपटें उठ रही होंगी, उनसे टकराकर कौन भस्म होना चाहेगा !

लेकिन कब तक ऐसा रहता !

लोगों ने आँखें बचाकर देखा—सम्राट् का चेहरा मुरझा-सा गया था। तपते हुए तांबे की तरह दमकता उनका चेहरा इस समय पीला पड़ गया था। सब कुछ इस तरह अचानक ही हो गया था कि कोई कुछ समझ ही न पाया। महारानी सहसा उठ खड़ी हुईं। उस भयानक काण्ड के कारण उनकी देह थर-थर काँपने लगी थी। गीली आँखों को आँचल से छिपाकर वह कंचुकी तथा अंग-रक्षिकाओं के सहारे धीरे-धीरे अन्तःपुर में चली गईं। सम्राट् अवाक् बैठे देखते रहे।

सहसा कई स्वर गूँज उठे, "पकड़ो उस नीच ब्राह्मण को ! उसका वध कर दो ! राजद्रोही..."

रक्षकों में जैसे एकाएक जान आ गई। एक हलचल-सी उठी, पर तभी सम्राट् ने उन्हें रोक दिया, "नहीं, जाने दो उसे। ब्रह्महत्या पाप है।"

महामात्य राक्षस ने कहा, "सच है, सम्राट्, किन्तु अपराधी को दण्ड देना तो पाप नहीं है ! उसने राजसभा में खड़े होकर ऐसी बातें कही हैं। सम्राट् को..."

"शाप दिया है !" नन्दराज ने महामात्य की बात पूरी की। और अब तुम चाहते हो कि सारा संसार कहे, मगध के सम्राट् उस ओछे ब्राह्मण से डर गए। उसकी धमकी से भयभीत होकर उन्होंने उसकी हत्या कर दी।"

आर्य राक्षस ने माथा झुकाकर कहा, "राजनीति की दृष्टि में छोटे-बड़े का कोई अन्तर नहीं है, महाप्रभो ! पता नहीं कौन-सा काँटा कल त्रिशूल बन जाए।"

नन्दराज जोर से हँस पड़े ; बोले, "हम अपने महामात्य को डरपोक या कायर नहीं कहना चाहते। वास्तव में आर्य राक्षस हमारे हित के लिए इतने बेचैन रहते हैं कि छोटी-सी शंका भी उन्हें चिन्तित कर देती है।"

साथ ही सम्राट् उठ खड़े हुए। कंचुकी उन्हें मार्ग दिखाती हुई अन्तःपुर की ओर ले चली।

उनके जाते ही धीरे-धीरे सभी नागरिक और सभासद चले गए। उस एकान्त शाला में नीरवता छा गई। अकेले राक्षस ही खोए-खोए-से वहाँ बैठे रहे।

बड़ी देर बाद सहसा उनके मित्र सेठ चन्दनदास भीतर आए। इधर-उधर झाँककर देखा—कहीं कोई नहीं। वह धीरे-धीरे राक्षस के पास आ खड़े हुए, पर महामात्य उसी तरह विचारों में डूबे

रहे। उन्हें चन्दनदास के आने का पता ही नहीं चला।

"आर्य !" चन्दनदास ने धीमे स्वर से पुकारा।

राक्षस ने इस तरह आँखें खोल दीं जैसे एकाएक नींद टूट गई हो। वह रीती आँखों से चन्दनदास को देखने लगे।

"कब तक अकेले ही बैठे रहेंगे ? मैं बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा, फिर आपको खोजता-खोजता यहीं चला आया। सोचा था, आप अपने भवन में जाकर कुछ देर विश्राम करेंगे…"

"ओऽऽऽह !" राक्षस ने उठते हुए कहा, "चलो-चलो। मैं तो भूल ही गया था कि आज तुम्हारे यहाँ जाना है।"

बाहर निकलकर दोनों रथ पर बैठ गए।

सेठ चन्दनदास से महामात्य राक्षस की बड़ी पुरानी मित्रता है। चन्दनदास पाटलिपुत्र के बहुत बड़े व्यापारी हैं। उन्हें कोई विशेष राज-पद नहीं मिला है, फिर भी राक्षस के स्नेह के कारण उनका सम्मान बढ़ गया है। इसी कारण राजभवन में उनके प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं होती। उनका घर नगर के एकदम उत्तरी छोर पर बना है। पूर्वजों के समय से ही वह वहीं रहते आए हैं। भवन पुराना पड़ गया है, फिर भी उसके प्रति उनका मोह कम नहीं हुआ। वहाँ से हटकर वह सेठों की वीथी में नहीं बसे।

नगर के भरे हुए बाजारों और मुख्य भागों को पार करके रथ गंगा के तट के साथ-साथ चलने लगा।

एकान्त में भी राक्षस को चुप बैठा देखकर चन्दनदास अचानक पूछ बैठे, "देव ! आप क्या सचमुच उस कुरूप ब्राह्मण की प्रतिज्ञा के कारण चिन्तित हैं ?"

महामात्य राक्षस खिन्न होकर मुस्कराए ; बोले, "ना…नहीं तो, चन्दन ! केवल उसी के कारण चिन्तित नहीं हूँ, मित्र, पर देख रहा हूँ कि सम्राट् का स्वभाव दिनों-दिन और भी बदलता

जा रहा है। इधर बहुत दिनों से यही देख रहा हूँ। और ऊपर से आज यह काण्ड···कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होगा !"

"कुछ और भी हुआ, आर्य ?" चन्दनदास ने पूछ तो लिया, फिर एकाएक बोले, "क्षमा करें, आर्य ! राज-कार्य का भेद सुरक्षित ही रहना चाहिए। उस भेद के प्रति मेरी जिज्ञासा नहीं है। यदि हो सके तो बताएँ···नहीं तो ··"

महामात्य ने हँसकर कहा, "तुमसे क्या छिपा है, चन्दन ! तुम्हारे ऊपर सन्देह करना पाप है।" फिर रुककर विषय पर लौटते हुए बोले, "रोज ही तो कोई-न-कोई काण्ड होता रहता है। कभी-कभी राजा को पता नहीं क्या हो जाता है। सेना के उस नायक मौर्य वाली बात याद है ? पता नहीं किसने कान भर दिए और नन्दराज ने कुपित होकर उसे कारागार में डाल दिया। मैं कुछ उपाय करता, इसके पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी स्त्री और पुत्र भी राजा के भय से पता नहीं कहाँ जा छिपे। अब इसी बात पर रुष्ट होकर यदि पिप्पलीवन के मौर्यों ने विद्रोह कर दिया होता तो वर्षों तक सीमा पर अशान्ति छाई रहती। वे कोई साधारण योद्धा नहीं हैं।"

"जानता हूँ, बन्धु, वे भगवान गौतम के वंश के हैं। शाक्यों के गणराज्य कपिलवस्तु की ही वह शाखा जाकर वहाँ बस गई। और शाक्यों के बल-वैभव का गीत तो आज भी गाया जाता है।"

कुछ देर चुप्पी छाई रही। राक्षस पता नहीं क्या सोचने लगे थे। रथ मोड़ पर घूमकर फिर से बस्ती में धँसा तो बोले, "जाने दो यह बात। अब जरा देखो कि सम्राट् ने पहले तो आर्य शकटार को कारागार में डालकर भयानक कष्ट दिया ; उन जैसे महान कूटनीतिज्ञ को बन्दी बनाकर उनका अपमान किया; उनके परिवार को भूखों मार डाला ; और अब उन्हीं को फिर से उपमहामात्य बना दिया।"

चन्दनदास ने कहा, "पर आर्य, उन्हीं सम्राट् ने आप जैसे योग्य व्यक्ति को राज्यभार भी तो सौंप दिया…"

"इससे क्या होता है, चन्दन ! कौन जाने, मेरा क्या भविष्य है !"

"देवता कल्याण करें !" चन्दन चौंक पड़ा, "अशुभ को कभी याद भी नहीं करना चाहिए।"

राक्षस ने कराहकर कहा, "राजनीति में सब कुछ मिलकर कुछ और बन जाता है, चन्दन ! कुछ पता नहीं चलता। फिर भी सोचो, यदि आर्य शकटार इतने वर्षों तक कारागार में न रह-कर बाहर रहते तो मगध की कितनी उन्नति होती ! अब तक क्या से क्या हो जाता ! अब वह फिर आ गए हैं, पर…"

"पर…?" चन्दन की आँखों में शंका लहरा उठी।

"नहीं-नहीं, कुछ वैसी बात नहीं है। अरे ! हम तो पहुँच ही गए। पुत्र के जन्म का उत्सव खूब मनाया जा रहा है ! यहीं से मधुर मंगल गीत सुनाई पड़ रहे हैं। कल्याण हो !"

चन्दनदास समझ गए कि आर्य राक्षस विषय बदल देना चाहते हैं। हाथ जोड़कर बोले, "आपका स्नेह बना रहे तो कल्याण ही होगा।"

महामात्य राक्षस इस बीच फिर चिन्ता में खो गए थे। रथ धीरे-धीरे चलता हुआ चन्दन के द्वार पर खड़ा हो गया। वहाँ बैठे नागरिक महामात्य को देखकर जोर-जोर से जयकार करने लगे।

रथ से उतरते-उतरते अमात्य राक्षस अचानक ठमक गए। उन्होंने चन्दन के कान में कहा, "मैं अभी आता हूँ, चन्दन ! बस, कुछ ही पलों में…"

और सारथी ने संकेत पाकर रथ को फिर तेजी से हाँक दिया।

६

बाहर आर्य शकटार का रथ तैयार खड़ा है, किन्तु वह अपने नए भवन के सामने लगे उपवन में टहल रहे हैं। चर बड़ी देर से गया हुआ है, पर अभी तक चन्द्रगुप्त को लेकर लौटा नहीं। उन्होंने देवी मुरा को वचन दिया है, चन्द्रगुप्त को अपने साथ वह राज-सभा में ले जाया करेंगे।

वह ठमक गए। अभी पता नहीं और क्या-क्या देखना होगा।

बार-बार उनका हृदय धड़कने लगता है। देवी मुरा को वचन देना ठीक नहीं रहा। जो व्यक्ति अपने परिवार की रक्षा नहीं कर सका, उससे बढ़कर अभागा कौन होगा! चन्द्रगुप्त को भी अपने साथ रखकर वह कहीं···

उफ्! यदि उनका अभाग्य चन्द्र के सिर पर भी छा गया, तो? माँ ने उसको छाती में भरकर पता नहीं कितने सपने देखे होंगे। सृष्टि ने पता नहीं कितनी उदारता से इस बालक की रचना की है, पता नहीं किन तत्वों से उसका पालन-पोषण किया है, कितना लम्बा समय खर्च करके वह धीरे-धीरे युवक होगा,

विद्या प्राप्त करेगा ; कितनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद एक व्यक्ति तैयार होगा। और...

आर्य शकटार ने होंठ काट लिए। वह होनहार बिरवा किसी भी दिन एक व्यक्ति की भौंहों का संकेत होते ही धरती का बोझ बन जाएगा। ठीक वैसे ही, जैसे एक दिन स्वयं शकटार बन गए थे। ठीक वैसे ही, जैसे चन्द्रगुप्त का पिता मौर्य भार बन गया था। उसने अत्याचारों की आग में झुलस-झुलसकर दम तोड़ दिया। वैसे ही किसी भी दिन चन्द्रगुप्त अनहोनी के जबड़े में छटपटाने लगेगा...

उन्होंने चन्द्रगुप्त की माँ देवी मुरा को समझाया था—"ऐसी जल्दी क्या है। चन्द्रगुप्त अभी बहुत छोटा है, देवि !"

पर देवी मुरा कुछ और ही समझीं ; बोलीं, "आर्य, अपने मित्र मौर्य को याद कीजिए। आज वह नहीं हैं; इस धरती पर चन्द्रगुप्त का फिर है ही कौन ? आपने ही तो उनका मूल्य आँका था ! फिर चन्द्रगुप्त..."

बड़ी देर तक शकटार उन्हें टालते रहे, पर मित्र मौर्य का नाम आते ही वह उत्तेजित हो गए। वह भूल बैठे कि अब वह फिर से मगध की राजसभा में उपमहामात्य के पद पर हैं। कठोर होकर बोले, "हाँ, मैंने ही उसका मूल्य आँका था, और तब भी तो मैं ही था, देवि, जब उसने तड़प-तड़पकर कारावास में दम तोड़ दिया। मैंने उसके जीवन का मूल्य ले लिया था ! तुम चाहती हो कि उसके नन्हे-से शिशु को भी उसी तरह ले जाकर आग में झोंक दूं ?"

देवी मुरा स्तब्ध खड़ी रहीं। आर्य शकटार कह क्या रहे हैं ! वह निकट ही खड़ी दासी की ओर देखने लगीं।

विचक्षणा चुपचाप वहाँ से हटकर चली गई। तब देवी मुरा ने गम्भीर स्वर में कहा, "पर अतीत में किसी की मृत्यु देखकर हम

सब भविष्य में जीवन का मोह तो नहीं त्याग देते, आर्य ! जीना तो पड़ेगा ही।"

शकटार उनकी ओर अचरज-भरी दृष्टि से देखते ही रह गए। इस स्त्री का निर्माण पता नहीं किस धातु से हुआ है। पति का दुखद अन्त सहकर भी वह केवल एक शिशु को लेकर जीती रह गई और आज उसे भी उसी धीरज के साथ सौंप रही है ! पृथ्वी जैसा यह धैर्य शकटार सह नहीं पाएँगे। वह विचलित हो गए।

देवी मुरा ने कहा, "न चाहते हुए भी इस धरती पर पता नहीं क्या-क्या करना पड़ता है। आप क्या फिर से मगध के अमात्य बनना चाहते थे, आर्य ! पर अपमान सहकर भी आप फिर से राजपरिषद् में आए हैं। मैं नहीं जानती, इसका क्या कारण है। पर जो भी हो, वैसे ही किसी कारण से मैं चन्द्रगुप्त को आपके हाथों सौंप रही हूँ।" उसका स्वर भर आया। गीली आँखें पोंछती हुई बोलीं, "बड़ी कामना है कि वह कुछ बने। आज आर्यपुत्र मौर्य नायक होते तो चन्द्रगुप्त तक्षशिला जाकर शिक्षा प्राप्त करता !"

थोड़ी देर चुप्पी छाई रही। देवी मुरा ने अपने को सँभाल लिया था। पहले की ही तरह धीरज के साथ वह बोलीं, "मैं असमर्थ हूँ, किन्तु जो कुछ हो सकता है, वह तो करूँ। आपके आशीर्वाद की छाया में वह बनेगा ही। राजनीति में उसे बड़ी रुचि है। यही सही।"

फिर याचनाभरी दृष्टि डालकर बोलीं, "सच कहूँ, आर्य ! मुझे डर लगने लगा है, उस छोटी-सी बस्ती में, उस छोटी-सी कुटिया में चन्द्रगुप्त के सपने टूट जाते हैं। अब उसके लिए सपने ही तो हैं ! बड़ा हो गया है। डरती हूँ, किसी दिन उकताकर कहीं भाग-भटक न जाए ! इसीलिए···यहाँ रहेगा तो आँखों से

देखती तो रहूँगी !"

माँ की अधीरता और धीरज के बीच कितनी गहरी खाई होती है, इसे मगध के उपमहामात्य शकटार समझ नहीं पा रहे हैं। देवी मुरा की गीली आँखों की ओर वह पल-भर देखते रहे। उन्हें लगा, जैसे अपनी आठ-आठ सन्तानों के प्रति उनका मोह भीतर-ही-भीतर कसमसा रहा है। वह तुरन्त उठ खड़े हुए थे। देवी मुरा जो चाहती हैं, वही होगा···

आहट सुनते ही वह ठिठके। थोड़ी ही दूर खड़े चन्द्रगुप्त ने उन्हें प्रणाम किया। वह ठगे-से देखते रह गए। ठीक वैसा ही ऊँचा, भरा-पूरा शरीर, लम्बी-लम्बी भुजाएँ, चौड़े कन्धे, आत्म-गौरव से तनी हुई छाती···एकदम उनके मित्र मौर्य जैसा है। ऊँचा मस्तक जैसे राजमुकुट धारण करने के लिए गढ़ा गया हो। पर हो सकता है, किसी दिन यही मस्तक धूल में रगड़-रगड़कर···

उन्होंने कातर स्नेह से पुकारा, "वृषल, निकट आ !"

चन्द्रगुप्त धीरे-धीरे पास आ खड़ा हुआ।

भीतर-ही-भीतर पता नहीं क्या उमड़ने लगा। शकटार कुछ बोल नहीं सके। हाथ उठाकर उन्होंने एक बार स्नेह से चन्द्रगुप्त का माथा सहलाया, उसके केशों को अंगुलियों से सँवारा, फिर सहसा सजग होकर उसका हाथ पकड़ते हुए बोले, "आ, चल !"

रथ नगर के कई भागों में घूमता हुआ सभा-भवन की ओर बढ़ रहा था। चन्द्रगुप्त की आँखों में जिज्ञासा उमड़ी पड़ रही थी। पर वह चुप बैठा रहा। शायद संकोच के मारे कुछ पूछता नहीं था। एकाध बार इस तरह सिर हिलाता जैसे कोई बात अचानक समझ में आ गई हो। उसकी गम्भीरता इस उम्र में अनोखी-सी लगी, फिर भी आर्य शकटार को इससे उसका व्यक्तित्व कुछ बड़ा लगने लगा।

राजसभा में विचित्र ही दृश्य था। एक ओर कुछ व्यक्ति अलग ही खड़े थे। शकटार समझ गए, वे समुद्र के उस पार रोम देश के दूत हैं। सभा-भवन में बीचों-बीच एक पिंजड़ा रखा था, जिसमें किसी धातु की बनी हुई एक सिंह की मूर्ति रखी थी। सब उस ओर ध्यान से देख रहे थे और पता नहीं कहाँ खोए-खोए-से लगते थे। द्वारपालों ने जयजयकार करके उपमहामात्य के आने की सूचना दी। शकटार ने सभा-भवन में उपस्थित सदस्यों का अभिवादन स्वीकार किया। फिर चन्द्रगुप्त के बैठने का प्रबन्ध करके वह अपने आसन पर जा बैठे।

थोड़ी ही देर बाद महामात्य राक्षस आए और उनके कुछ देर बाद सम्राट् भी पधारे। सिंहासन पर उनके बैठते ही राज-सभा में चुप्पी छा गई। महामात्य का संकेत पाकर विदेशी दूत ने आगे बढ़कर सम्मान के साथ अभिवादन किया। फिर उसने अपने राजा की ओर से लाए हुए मूल्यवान उपहार रखे।

सम्राट् ने प्रसन्न होकर उपहार स्वीकार किए।

राजदूत ने कहा, "हमारे महाराज ने एक और उपहार भेजा है।" उसने लोहे के पिंजड़े की ओर संकेत किया, "यह सिंह। उन्होंने विनम्र निवेदन किया है कि हमने इस सिंह को बन्दी तो बना लिया, पर विचित्र बन्धनों के कारण न पिंजड़ा खोल सकते हैं, न काट सकते हैं। इन बन्धनों की रक्षा करते हुए उसे बाहर निकालना अब मगध-सम्राट् के प्रताप से ही सम्भव है। महाप्रभु उस पर अनुग्रह करें!"

सुनते ही सम्राट् ने मुस्कराकर पिंजड़े की ओर देखा, फिर आर्य राक्षस और शकटार की ओर देखकर हँसे।

उनका आशय तुरन्त समझ में आ गया। महामात्य राक्षस आर्य शकटार के साथ उठकर पिंजड़े को देर तक देखते रहे। फिर उन्होंने घोषणा की, "विद्वान् सभासद इसे देखें और मगध

के मित्र रोम के महाराज की इच्छा पूरी करें !"

कई सभासद पहले ही उसे देख चुके थे। शेष ने भी बारी-बारी से देखा, फिर अपने-अपने आसन पर बैठ गए।

बड़ी देर तक सभा में फुसफुसाहट-सी चलती रही, पर कोई भी उठा नहीं।

"सिंह को कौन बाहर निकाल रहा है?" सहसा सम्राट् ने कुछ व्यग्र होकर पूछा।

थोड़ी देर तक सभा में हलचल रही। हर व्यक्ति ने सभा में बैठे हर व्यक्ति की ओर देखा। फिर सन्नाटा छा गया। सबकी आँखें लज्जा के कारण झुकी-सी रह गईं।

"महामात्य !" सम्राट् गरज उठे, "मगध की बुद्धि को क्या हो गया है ? महापद्म नन्द की राजसभा में क्या एक भी···"

"सम्राट् की जय हो !"

सम्राट् के साथ-साथ हर व्यक्ति की दृष्टि सभा-भवन के कोने में खड़े पन्द्रह-सोलह वर्ष के किशोर पर टिक गई !

चन्द्रगुप्त ! आर्य शकटार ने होंठ काट लिए। उनकी आँखों के सामने देवी मुरा की गीली आँखें नाच उठीं। उनकी मुट्ठी आसन पर जकड़-सी उठी।

"मुझे आज्ञा मिले, सम्राट् !"

सम्राट् की क्रोधाग्नि में जैसे घी की आहुति पड़ गई। उन्होंने फुफकारकर कहा, "आज्ञा है ! पर यदि तू असफल रहा तो तेरे ही खून से इस सिंह को स्नान कराया जाएगा !"

आर्य शकटार का हृदय तेजी से धड़कने लगा। यह क्या हो गया ! यदि उसी समय उन्होंने कठोर होकर मुरा को निराश कर दिया होता तो अच्छा था। आज साँझ को जब मुरा रोती-बिलखती आएगी और उनके द्वार पर सिर पटक-पटककर पूछेगी, मेरा चन्द्रगुप्त कहाँ है आर्य···तब ?

शकटार की आँखों के सामने चन्द्रगुप्त का कटा हुआ सिर और खून से लथपथ धड़ तड़पता दिखाई पड़ने लगा। उन्हें शाप है। जिसे भी वह छू देंगे, उस पर राजा का कोप वज्र की तरह टूटेगा। उसका विनाश हो जाएगा। अपना सारा परिवार, फूल की तरह खिले बच्चे और मौर्य जैसा मित्र खोकर उन्हें चैन नहीं था, जो इस सुकुमार बच्चे को भी लाकर आग की लपटों में झोंक दिया! अब वह कुछ नहीं कर सकते, कुछ भी नहीं। निढाल होकर वह आसन पर लुढ़क-से गए।

किन्तु चन्द्रगुप्त के चेहरे पर सम्राट् के कठोर शब्दों का जरा भी प्रभाव न दिखाई पड़ रहा था। वह निडर होकर लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ पिंजड़े के पास आ खड़ा हुआ। कुछ देर उसकी ओर देखता रहा, फिर बोला, "इस पिंजड़े को पानी में डुबा दिया जाए।"

संकेत पाते ही अनुचरों ने बड़े-से पात्र में पानी भरकर पिंजड़ा उसमें रख दिया। सब तेजी से धड़कते हृदय से प्रतीक्षा करते रहे, पर कुछ भी न हुआ। चन्द्रगुप्त ने पलटकर रोम के राजदूत की ओर देखा। वह उपेक्षा से मुस्करा रहा था। अमात्य शकटार पसीने से नहा उठे। आगे क्या होगा, वह जानते हैं। पर आगे वह सहन नहीं करेंगे। अब नहीं। उनका हाथ कटार की मूठ पर पड़ गया। सम्राट् की भृकुटि हिलते ही सभा-भवन की चाँदी जैसी चमकती धरती चन्द्र के रक्त से लाल हो जाएगी...पर इतना ही नहीं...आज उस रक्त में दो रक्त और मिलेंगे...मगध-सम्राट् की छाती में अमात्य शकटार की कटार धँस जाएगी, खून की फुहार उठेगी, फिर वही कटार स्वयं उप-महामात्य शकटार की छाती भी चीर डालेगी...

वह सहसा उभककर उठ बैठे। चन्द्रगुप्त पिंजड़ा पानी से उठाकर उसे आँखों के सामने किए ध्यान से देख रहा था। उसकी

निर्भीक दृष्टि में धीरे-धीरे विश्वास की चमक उभर आई। उसने सहसा आज्ञा दी, "इस पिंजड़े के चारों ओर आग जलाने का प्रबन्ध किया जाए।"

महामात्य राक्षस उत्सुक होकर, पता नहीं कब, ठीक उसके पास आ खड़े हुए थे। चन्द्रगुप्त की बात सुनते ही उनकी आँखें चमक उठीं। उनके संकेत पर दासों में भगदड़-सी मच गई और थोड़ी ही देर में पिंजड़े को एक शिला पर रखकर उसके चारों ओर आग लगा दी गई।

सभा में सन्नाटा छाया रहा। साँसें फिर रुक-सी गईं। हर व्यक्ति एकटक उसी ओर देख रहा था। थोड़ी ही दूर पर खड़ा चन्द्रगुप्त पहले की तरह ही अपलक दृष्टि से सिंह की ओर घूरता रहा। सहसा उसने देखा—सिंह की मूर्ति के माथे पर धीरे-धीरे गीली-सी चमक उभरी और देखते-ही देखते पिघली हुई चाँदी की-सी एक बूँद ढलककर नीचे पत्थर पर आ गिरी।

चन्द्रगुप्त ने दाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधकर बाईं हथेली पर मारी और महामात्य की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा, "वह देखिए, आर्य!"

राक्षस ने भी उस ओर ध्यान से देखा, फिर सब कुछ समझ में आ गया। वह समझ गए, सिंह सीसा धातु का बना था, इसी कारण थोड़ी गरमी से ही पिघलने लगा था। लोहे का पिंजड़ा ज्यों-का-त्यों पड़ा था। वह चमत्कृत होकर चन्द्रगुप्त को देखने लगे।

देखते-देखते पूरा सिंह पिघलकर शिला पर फैल गया। चन्द्रगुप्त ने वहीं से सिर झुकाकर कहा, "सम्राट् प्रसन्न हों, सिंह पिंजड़े से बाहर आ गया है! वह मुक्त हो गया..."

सम्राट् ने गर्व से दूत की ओर देखते हुए कहा, "दूत, अपने राजा से कहना, हमें खेद है कि हमारे प्रताप के कारण उनका

सिंह पिघलकर बह गया। महामात्य, इस किशोर को पुरस्कार दिया जाए !"

फिर वह उठकर चल पड़े।

सभा में कोलाहल-सा मच गया।

6

पाटलिपुत्र नगर के बाहर शोण नदी के तट पर काफी बड़ा मैदान यों ही खाली पड़ा था। वैसे यहाँ साल-भर में कितनी ही बार मेले लगते थे। कभी-कभी यहाँ सार्वजनिक उत्सवों में नाटक भी खेले जाते। बाकी समय यह स्थान खाली ही पड़ा रहता।

बीच में एक चबूतरा बना था। उस पर चन्द्रगुप्त बैठा था। आसपास उसी की उम्र के कई और लड़के बैठे थे। चन्द्रगुप्त के गले में फूलों का बड़ा-सा हार पड़ा था। माथे पर चन्दन लगा था। उसने सिर पर भी फूलों का एक मुकुट पहन रखा था।

खेल शुरू हुआ। नीचे बैठे किशोरों ने उठकर आदर से प्रणाम किया। साथ ही जयजयकार गूँज उठा, "राजा की जय हो!"

"महामात्य, प्रजा कुशल से तो है?" चन्द्रगुप्त ने शान से पूछा।

दाईं ओर एक चट्टान पर बैठे किशोर ने उठकर फिर से हाथ जोड़कर कहा, "राजा की कृपा से सब कुशल ही है, प्रजा

आनन्द से है, प्रभो !"

राजा ने पूछा, "किसी को दुख तो नहीं ? किसी पर कोई अत्याचार तो नहीं ?"

किशोर महामात्य ने उत्तर दिया, "किस में साहस है जो प्रतापी राजा की प्रजा को दुख दे ! हमारे राजा की प्रजा पर कौन अत्याचार करेगा !..."

अचानक एक स्त्री के रोने की आवाज सुनाई पड़ी।

राजा के साथ-ही-साथ सबकी आँखें उस ओर उठ गईं। एक स्त्री गोद में एक छोटा-सा बच्चा लिए आगे-आगे तेजी से चली जा रही थी, पीछे-पीछे एक कमजोर-सी स्त्री रोती हुई दौड़ रही थी। वह बार-बार आगे आ जाती स्त्री को पकड़ती, हाथ-पाँव जोड़ती और उसके पैर पकड़कर लटक जाती, पर वह बार-बार उसे धक्का देकर छुड़ा लेती या उसे ठोकर मारकर तेजी से बढ़ चलती। कमजोर स्त्री और जोर से रोने लगती और फिर लड़खड़ाती हुई उसके पीछे लग जाती।

चन्द्रगुप्त ने सहसा कहा, "तू कहता है कि प्रजा दुखी नहीं है, फिर यह क्या हो रहा है ? वह स्त्री रो क्यों रही है ?"

खेल में बना किशोर महामात्य कुछ समझ न सका। खेलने के पहले ऐसा कुछ तो सोचा नहीं गया था। रास्ते पर रोती जाती उस स्त्री का क्या किया जाए ? महामात्य ने सिर झुका लिया।

राजा ने आज्ञा दी, "उन दोनों को पकड़ लाओ, हम उनके दुख का कारण जानना चाहते हैं !"

उसी ओर से नगर की ओर जाता हुआ एक राही सहसा ठिठक गया। उसने राजा की आज्ञा सुनी, साथ ही सभा के छोर पर द्वारपाल बनकर खड़े दो किशोरों को अपने डंडे सँभालकर उन स्त्रियों की ओर बढ़ते देखा। कौतुकवश वह पास ही आ

खड़ा हुआ। उसका शरीर एकदम काला था। आँखें लाल थीं, माथे पर लाल चन्दन लगा था। अधखुले होंठों के भीतर से उजले दाँतों की तीखी कौंध अद्भुत-सी लग रही थी। सिर एक-दम घुटा हुआ था। हाँ, शिखा खुलकर यों ही लटकी थी।

दोनों लड़के उन स्त्रियों को भेड़ की तरह हाँकते हुए इस ओर ले आए। आगे-आगे चलती स्त्री ने घमण्ड के साथ चिढ़-कर कहा, "यह कैसे दिन आ गए हैं! कल के लड़के राह-चलतों पर डाका डालने लगे! मैं राजपुरुषों से कहूँगी···प्रजा पर इस तरह का अत्याचार···"

महामात्य बने किशोर ने डपटकर कहा, "चुप रह! राजा चन्द्रगुप्त के होते हुए किस में साहस है कि प्रजा पर अत्याचार करे!"

स्त्री सहमकर इधर-उधर ताकने लगी।

दूसरी स्त्री खड़ी नहीं रह पा रही थी। वह जमीन पर बैठ-कर रोती हुई बोली, "दुहाई है! कोई बचाओ! मेरे लाल को मुझसे मत छीनो, बहन! मेरा सब कुछ ले लो, मेरा···"

वह पहली स्त्री के पैरों पर लोट गई, पर ठोकर खाकर उलटी गिर पड़ी और जोर से चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी, "दुहाई है! दुहाई है!"

द्वारपालों में से एक ने डंडा तानकर धमकाते हुए कहा, "चुप रह! राजा की सभा में खड़ी होकर इस प्रकार हल्ला क्यों मचाती है?"

दोनों डरकर पिछड़ गईं।

राजा ने सिर हिलाकर कहा, "महामात्य! इनसे पूछो, क्यों लड़ रही हैं। हम न्याय करेंगे।"

महामात्य ने पहली स्त्री से कहा, "बता, क्या बात है? तू कौन है? यह स्त्री कौन है? दोनों लड़ क्यों रही हो?"

स्त्री ने सहमी आँखों से उनकी ओर देखकर कहा, "यह स्त्री मेरी दासी है, मेरे बच्चे की देख-रेख करती थी···"

"झूठ है, यह झूठ बोलती है···"

"चुप रह !" चन्द्रगुप्त ने डाँटकर कहा, "पहले उसे कहने दे, फिर तेरी बात भी सुनी जाएगी। तू बोल !"

पहली स्त्री कहने लगी, "पर इस बीच यह पगली हो गई। अब यह मेरे बच्चे को अपना बच्चा कहती है। अवसर पाकर इसे अपने साथ उठा ले गई। मैं बड़ी कठिनाई से खोजकर पा सकी। अब इसी के भय से मैं यह गाँव छोड़कर नगर में चली आई हूँ। यहाँ मेरा पति नाविक है। उसी के साथ रहूँगी···पर यह पीछा ही नहीं छोड़ती···"

उसने कपड़ा हटाकर बच्चे की ओर देखा, फिर उसे चूम-कर बोली, "मेरा लाल···बेचारा कब से भूखा होगा। इसके कारण मैं अब तक इसे दूध भी न पिला सकी। इसे किसी तरह रोको, भैया, मैं जान बचाकर चली जाऊँ !"

उसने बच्चे को छाती से लगा लिया और चलने को तैयार हुई। दूसरी स्त्री चीखकर रो पड़ी।

"रुको !" चन्द्रगुप्त ने द्वारपालों को संकेत किया। उन्होंने घेरकर उसे रोक लिया।

"तू बता !" दूसरी स्त्री की ओर देखकर चन्द्रगुप्त ने आज्ञा दी।

वह बेहाल हो गई थी। किसी तरह रोती-रोती बोली, "यह मेरा बच्चा है···यह झूठ कहती है। यह तो बाँझ है। इसके कभी बच्चा हुआ ही नहीं। अब मेरे बच्चे को छीनना चाहती है। हाय, कब से मेरे लाल को लेकर दबोचे-दबोचे भाग रही है, दुख से बिलख-बिलखकर वह रो रहा है। एक बार मेरे लाल को दे दो, बहन, मैं तो तुम्हारी दासी हूँ। बस, एक बार इसे

छाती से लगा लेने दो···" वह दौड़ी पर पहली स्त्री ने दूर से ही उसे ढकेल दिया। एक किशोर ने लपककर उसे सँभाल लिया।

"राजा न्याय करें !" महामात्य ने सिर झुकाकर कहा।

चन्द्रगुप्त के चेहरे पर गहरी रेखाएँ खिंच आई थीं।

पास ही खड़ा कुरूप राही भी परेशान हो गया। भला इस झगड़े का निर्णय कैसे होगा ! वह कौतूहल के साथ चन्द्रगुप्त की ओर देखने लगा।

चन्द्रगुप्त की तीखी दृष्टि बारी-बारी से दोनों स्त्रियों के चेहरे पर दौड़ती रही, पर कुछ भी अनुमान नहीं लगता था। दोनों ही बच्चे के लिए तड़प रही थीं। दोनों ही रो रही थीं। दोनों अपने-अपने हठ पर अड़ी थीं।

"राजा न्याय करें !" महामात्य ने फिर दुहराया।

राजा ने सिर हिलाकर आज्ञा दी, "बच्चे को यहाँ लाओ, महामात्य !"

स्त्री बच्चे को देना नहीं चाहती थी, पर भयवश उसे देना ही पड़ा।

"बधिक को बुलवाओ !" राजा ने आज्ञा दी।

थोड़ी देर के लिए वह छोटी-सी राजसभा चकित रह गई। आज तक बधिक की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी थी, इसलिए किसी किशोर को बधिक नियुक्त भी नहीं किया गया था।

"बधिक बुलाया जाए !" राजा ने फिर से आज्ञा दी।

महामात्य को उपाय सूझ गया। उसने तुरन्त ही पास ही खड़े राही को संकेत करके बुलाया।

कौतुकवश राही भी तुरन्त पास आ खड़ा हुआ। राजा ने आज्ञा दी, "बच्चा बधिक को दो !"

राही ने बच्चे को ले लिया और अगली आज्ञा की प्रतीक्षा

करने लगा।

राजा ने एक बार फिर दोनों स्त्रियों की ओर ध्यान से देखा। हर व्यक्ति की तरह वे भी अवाक् खड़ी यह खेल देख रही थीं। उन्हीं की ओर निगाह टिकाए-टिकाए राजा ने आज्ञा दी, "बधिक. [illegible]स शिशु को बीच से चीरकर दोनों स्त्रियों में बराबर-[illegible]ट दे !"

[illegible] [illegible]ाज्ञा सुनकर वहाँ खड़ा हर व्यक्ति काँप उठा। राही [illegible] [illegible]कर अपनी लाल-लाल आँखों से स्त्रियों की ओर देखने [illegible]। उसकी गोद में पड़ा बच्चा उछल-उछलकर रो रहा था।

र[illegible]जा ने गरजकर कहा, "आज्ञा का पालन किया जाए !"

भ[illegible]ावने पथिक की लाल-लाल आँखों से आँखें मिलते ही सहस[illegible] दासी चिल्लाकर रो पड़ी ; बोली, "नहीं-नहीं, उसे मारो [illegible] ···उसे ही दे दो, उसे ही दे दो···मेरा लाल जीता तो रहेगा···"

साथ ही वह अचेत होकर गिर पड़ी।

राजा उठ खड़ा हुआ। उसने आज्ञा दी, "महामात्य, बच्चा इसी स्त्री का है, इसी दासी का। यही माँ है। और उसे, उस स्त्री को ले जाकर राजपुरुषों के हाथ सौंप दो। उसे उसकी [illegible]रनी का दण्ड मिलेगा !"

स्त्री भागना चाहती थी, पर दो-तीन किशोर उसे पकड़कर घसीटते हुए बस्ती की ओर ले गए। महामात्य बना हुआ किशोर बच्चे को लेकर अचेत पड़ी स्त्री के पास आया और बोला, "ले माँ, राजा ने न्याय किया है···"

स्त्री ने तुरन्त आँखें खोल दीं और बच्चे को छाती से चिपटाकर हिलक-हिलककर रोने लगी।

चकित खड़े राही ने अचानक देखा कि राजा पगडंडी पर अकेला ही बस्ती की ओर चला जा रहा है। वह लपककर उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

१०

थपकी सुनते ही देवी मुरा ने उठकर कपाट खोल दिए, साथ ही दो पग पीछे हट गईं । द्वार पर एक बड़ा कुरूप व्यक्ति खड़ा था । एकदम काला रंग, माथे पर लाल चन्दन, लाल आँखें, चमकते हुए दाँत । घुटे हुए सिर पर बिना बँधी शिखा यों ही लहरा रही थी । पर देवी मुरा ने अपने को तुरन्त ही सँभाल लिया ; बोलीं, "आपका परिचय जान सकती हूँ ?"

"हाँ, मैं ब्राह्मण हूँ—पाटलिपुत्र घूमने आया हूँ ।"

मुरा ने प्रणाम करके कहा, "मैं धन्य हुई ! पधारिए !"

ब्राह्मण भीतर आया । मुरा ने काठ की चौकी बिछाकर उसे सम्मान के साथ बैठाया, फिर बोलीं, "मेरे योग्य सेवा ?"

"मैं आज के दिन दो वर्ष से पाटलिपुत्र आता हूँ । मेरा नियम है । आज तुम्हारा अतिथि बनूँगा, देवि !

मुरा ने पल-भर सोचकर कहा, "मेरा पुण्य है, देव, कि अपने-आप ब्राह्मण अतिथि बनकर मुझ अभागिन के द्वार पर आए । जैसे भी होगा, तिल-जौ से सत्कार करूँगी ।"

वह तुरन्त प्रबन्ध करने में लग गईं ।

जलपान करके ब्राह्मण ने कहा, "लक्षणों से तो लगता है कि तुम किसी महान् पुत्र की माँ बनोगी, देवि, फिर अपने को अभागिन क्यों कहती हो ?"

मुरा ने दुख-भरे स्वर से कहा, "अभागिन नहीं तो और क्या हूँ, देव ! राजकोप के कारण जीते-जी स्वामी से विछोह हो गया, फिर भी जीवित हूँ, केवल एक बेटे के कारण, पर उसे पता नहीं क्या लिखा है···उसके कारण चिन्ता से मेरी छाती फटी जाती है !"

ब्राह्मण हँस पड़ा ; बोला, "तेरा पुत्र तो औरों की चिन्ता दूर करने वाला होना चाहिए, आर्ये ! आश्चर्य है कि तुझे उसकी चिन्ता सताती है !"

"मैं माँ जो हूँ !" मुरा ने भरे कण्ठ से कहा, "और मेरा बेटा भी ऐसा-वैसा नहीं है, देवता, आप उसे देखकर ही समझेंगे। वह किसी को कुछ समझता ही नहीं । इतना-सा तो है, पर किसी का नियन्त्रण नहीं मानता ।"

ब्राह्मण हँसा ; बोला, "जिनका जन्म औरों को नियन्त्रित करने के लिए होता है, माँ, वह दूसरों का नियन्त्रण कैसे मानेंगे !"

देवी मुरा भी हँस पड़ीं ; बोलीं, "सब इसी तरह कहकर मुझे बहला देते हैं, आर्य ! कोई भी मेरे मन की पीड़ा नहीं समझता । पता नहीं क्या होने वाला है । इस चन्द्रगुप्त के कारण ही, केवल उसका मुँह देखकर मैं जी रही हूँ । पर उसका तो कहीं मन ही नहीं लगता । मैं उसे तक्षशिला भेजकर तो शिक्षा दिला नहीं सकती, वह यहीं रहकर कुछ सीख ले तो बहुत होगा । पर जब किसी की माने तब तो !"

ब्राह्मण धीरे-धीरे मुस्कराता रहा । देवी मुरा भोजन की ओर संकेत करती हुई बोलीं, "देखिए, कब से भोजन बनाकर

बैठी उसकी बाट देख रही हू । अभी-अभी क्षण-भर को आया था, बोला—बस, माँ, मैं तुरन्त ही आता हूँ, जरा सुरथ के घर हो आऊँ···रात गहरी होती जा रही है, पता नहीं कब लौटेगा !"

"उसके सम्बन्ध में इतनी चिन्ता करने की बात नहीं, देवि ! वह वीर है, निर्भीक है, अपने मन के भय की परछाईं डाल-डालकर तू उसे कायर मत बना, इसी में उसका कल्याण होगा ।"

"आपने तो उसे देखा भी नहीं, ब्राह्मण देवता, फिर··" मुरा ने जरा खीझकर कहा, "उसे देखकर कहेंगे कि कैसा उत्पाती है । अभी आ बैठे तो आपको बोलने भी नहीं देगा । पता नहीं कहाँ से क्या-क्या सीख आता है । सर्वज्ञ बनकर बोलता है···"

ब्राह्मण ने हँसकर कहा, "मैंने देखा है उसे, देवि, देखकर ही ऐसा कह रहा हूँ···उसकी बुद्धि और प्रतिभा की झलक भी पा चुका हूँ।"

"उसकी इस प्रतिभा और बुद्धि के कारण ही तो मैं और भी चिन्तित हूँ । ऐसे लड़के को छिपाऊँ भी तो कहाँ ! कितनी कठिनाई से आर्य शकटार के साथ उसे लगा दिया था कि कुछ गुण ही सीखेगा, पर वहाँ भी इसके उत्पातों से···"

"उत्पात ? आर्य शकटार ··मगध के उपमहामात्य की ही बात कह रही हो न !" ब्राह्मण ने चौंककर पूछा।

"हाँ-हाँ, वही । उनके साथ कुछ दिनों से राजसभा में जाने लगा है। पर वहाँ ऐसी-ऐसी बातें कर बैठा कि, बस ! आर्य शकटार कहते हैं, तुम्हारा पुत्र मेरे लिए समस्या बन गया है, आर्ये !" देवी मुरा सकुचाकर बोलीं, "अब उनसे क्या कहूँ !"

"पर आर्य शकटार की अनुकम्पा पाने पर भी···राजसभा में उसने उत्पात किया होता तो···मगध के सम्राट् उसे क्षमा कर देते क्या, आर्ये !"

मुरा ने बताया, "उत्पात ही तो करता है ! सुना एक दिन

रोम के राजा ने पिंजड़े में बन्द सिंह भेजा था। बिना पिंजड़ा खोले या तोड़े सिंह को बाहर निकालना था। अब सारी सभा तो चुप लगा गई, पर इससे न रहा गया। पता नहीं कैसे सूझा कि सिंह रांगे का होगा। चारों ओर आग जलाकर उसने सिंह को गला दिया...''

''अच्छा !'' ब्राह्मण चकित रह गया।

''हाँ, ऐसे ही पश्चिम के किसी राजा ने बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए अपने राजदूत से दहकते हुए अंगारे, ढेर-सी सरसों और एक मीठा फल भेजा था। उत्तर सोच-सोचकर सभा थक गई तो यह बोल पड़ा—राजा का कहना है, 'मेरा क्रोध अंगारों जैसा है। और सरसों के दानों से उसका आशय है कि हमारे पास असंख्य सैनिक हैं। यदि साहस हो तो युद्ध स्वीकार करो। फल का अर्थ है कि हमारी मित्रता का फल मीठा है'।''

देवी मुरा ने एक गहरी साँस खींचकर बताया, ''उत्तर में इसने एक घड़ा पानी, एक तीतर और एक अमूल्य रत्न भेज दिया। पानी का अर्थ है कि हम नीति से तुम्हारे क्रोध को शान्त कर सकते हैं, तीतर का अर्थ था कि हमारा एक-एक सैनिक तुम्हारे सैकड़ों सैनिकों को चुन लेगा, जैसे अकेला तीतर ही सरसों के सैकड़ों दाने निगल जाएगा। और रत्न का अर्थ था कि हमारी मित्रता अमूल्य और सदा एक-जैसी बनी रहने वाली है। अब तक तो किसी तरह आर्य शकटार उसे अपने दूर के किसी सम्बन्धी का लड़का कहते रहे, पर किसी दिन महाराज ने एका-एक उसके माँ-बाप का परिचय पूछ लिया तो, बस...''

देवी मुरा के चेहरे पर मलीनता छा गई।

ब्राह्मण ने प्रशंसा-भरे स्वर से कहा, ''ऐसे बेटे की माँ होकर भी तू चिन्तित है, आर्या ? यह उसका उत्पात है अथवा चमत्कार ?''

"ऐसा चमत्कार राजनीतिज्ञों को शोभा देता है, देव ! चन्द्रगुप्त के लिए तो यह उत्पात ही है। डरती हूँ किसी दिन इसी कारण महाराज का कोप इस पर भी न टूटे···"

ब्राह्मण ने संकोच के साथ कहा, "अगर तुझे दुख न हो देवि, तो बता, इसके पिता को···"

"इसके पिता मगध की सेना में तृतीय नायक थे। पर एक दिन महाराज ने किसी कारण कोप कर उन्हें कारावास में डाल दिया। वहीं···" वह फफक-फफककर रो पड़ीं।

ब्राह्मण का चेहरा और भी कठोर हो गया। उसकी आँखों की लाली बढ़ गई। वह एकटक इस तरह ऊपर देखने लगा जैसे छत को चीरकर उस ओर आकाश को देख रहा हो।

देवी मुरा डर गईं। विचित्र है यह अतिथि। उठती हुई बोलीं, "मैं आपके भोजन का प्रबन्ध करती हूँ, आर्य !"

पता नहीं कब से देवी मुरा थोड़ा-थोड़ा तिल, घी, गुड़ और मधु आदि जुटाती रही हैं। किसी दिन चन्द्रगुप्त माँगेगा तो उसे तिलोदक बनाकर देंगी। आज वही काम आया। तांबे के एक पात्र को खूब माँज-धोकर देवी मुरा उसी में सब-कुछ रखकर लाईं; बोलीं, "जो कुछ सम्भव है, वही अतिथि देवता के चरणों में अर्पित कर रही हूँ, स्वीकार करें !"

देखकर ब्राह्मण हँसा। स्वस्थ होकर आसन पर पालथी मारकर भोजन करने लगा।

खा-पीकर स्वस्थ होने के बाद वह बोला, "आशीर्वाद देता हूँ, माँ, धरती तेरे पुत्र की सेवा महाराज पृथु की तरह करे !"

देवी मुरा ने हँसकर कहा, "बहुत हुआ, आर्य ! ऐसा आशीर्वाद दो जिसे हम कल्पना में सह सकें। कहाँ तो अपने पराक्रम से धरती का दोहन करने वाले प्रतापी पृथु और कहाँ मेरा नन्हा-सा चन्द्र !"

"नन्हा-सा चन्द्र ही तो एक दिन पूर्णिमा का चन्द्र बनता है !" ब्राह्मण हँस पड़ा, "हाँ, उसे ग्रहण से बचाना होगा !"

"किसे बचाना होगा ?" द्वार से चन्द्रगुप्त की आवाज आई और वह जरा तेजी से आकर वहाँ खड़ा हो गया। वहाँ का दृश्य देखकर वह पल-भर चुप रहा, फिर बोला, "किसे बचाने की बात हो रही थी, माँ ?"

"चन्द्र को राहु से !" ब्राह्मण ने आचमन करके उसके पास आते हुए कहा।

"अरे···तुम !" चन्द्रगुप्त उसे पहचान गया।

"हाँ, राजा !" ब्राह्मण हँसा, "साँझ को मैंने तेरे राज्य में बधिक का अभिनय करके तेरे न्याय में सहायता की थी। कुछ भी हो, उस समय मैं बधिक था, पर इस समय तेरा अतिथि हूँ, ब्राह्मण हूँ, मुझे प्रणाम कर !"

चन्द्रगुप्त उसकी तेजभरी दृष्टि से प्रभावित हुआ। हाथ जोड़कर सिर झुकाते हुए उसने कहा, "पर मैं राजा तो नहीं हूँ, आर्य! आप विद्वान लगते हैं, इस प्रकार असत्य संभाषण क्यों ?"

देवी मुरा ने ब्राह्मण से क्षमा माँगकर चन्द्र को झिटकारते हुए कहा, "तू कभी किसी के सामने तो चुप रहना सीख, चन्द्र ! क्षमा कीजिएगा, आर्य ! मैंने कहा था न कि···"

"क्षमा की आवश्यकता नहीं, माँ, उसे पूछने दे।" ब्राह्मण ने सन्तुष्ट होकर कहा, "मैं तुझे उत्तर दे रहा हूँ, राजा, जिस तरह तू नाटक खेलकर उसमें अपना सपना पूरा करने के लिए राजा बनता है न, उसी प्रकार मेरी आँखों में भी एक सपना है। तेरे नाटक की तरह मेरा वह सपना रात-दिन मेरी आँखों में तैरता रहता है, इसीलिए मैं जो कुछ कहता हूँ, उसमें असत्य कुछ नहीं है।"

चन्द्रगुप्त ने सिर हिलाकर जैसे सहमत होते हुए कहा, "तो

मैं आर्य के स्वप्न का राजा हूँ ?"

"हाँ ! तुझे इस स्वप्न को पूरा करना होगा !"

एक ओर अवाक् खड़ी देवी मुरा उन दोनों की बातचीत सुन रही थीं। ब्राह्मण के चेहरे की ओर देर तक देखती रहने के बाद सहसा वह चौंक पड़ीं; बोलीं, "आप इस बालक से भी इतने गम्भीर होकर बोलते हैं, धन्य हैं !"

"नहीं, देवि, मैं अभिनय नहीं, सच कह रहा हूँ। राजा के सामने न मैं असत्य बोल रहा हूँ, न..."

"किन्तु..."

"तू मेरा एक अनुरोध मानेगी, माँ ? यह किशोर यहाँ तुम सबके लिए समस्या बन गया है। इसका भी जी नहीं लगता न ! तू इसे मुझको दे दे !"

"क्या ?" मुरा चौंकी, "क्या कहते हो, ब्राह्मण ? चन्द्र..."

उन्होंने चन्द्र को जल्दी से खींचकर इस तरह छाती से चिपका लिया जैसे कोई उसे बरबस छीने जा रहा हो।

ब्राह्मण हँसा, "नहीं, माँ, यह अब शोभा नहीं देता। इसे अब अपनी आँचल की छाया से भींच मत ! यह राजा है। इसे छोड़ दे, जिससे इसमें वह शक्ति पैदा हो कि यह दूसरों को छाया दे सके। इसे मेरे साथ जाने दे, माँ !"

देवि मुरा खीझ उठीं; बोलीं, "क्षमा करना, अतिथि, तुम विद्वान् होकर भी संसार का मोह नहीं समझते। जिसका मुँह देख-देखकर मैं कब से जी रही हूँ, उसे मैं बिना कुछ जाने-सुने किसी के साथ, कहीं भी, कैसे जाने दूँगी ! मैं कुछ भी तो नहीं जानती ! आखिर तुम कौन हो, कहाँ के हो..."

"तूने कभी चाणक्य का नाम सुना है, माँ ?"

"चाणक्य ?" देवी मुरा चौंक पड़ीं।

चन्द्रगुप्त ने उत्सुकताभरी दृष्टि से उसे देखते हुए कहा,

"आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य ?"

"हाँ, वही।"

"वह तो तक्षशिला के विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के आचार्य हैं।" चन्द्रगुप्त ने पास आकर कहा, "आर्य शकटार उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते। आप क्या आचार्य चाणक्य के…"

"मैं ही चाणक्य हूँ !" ब्राह्मण की भौंहें चढ़ गईं।

"आप ?" देवी मुरा और चन्द्रगुप्त कई डग पीछे हट गए। कुछ देर स्तब्ध रहकर उसे देखते रहने के बाद उन्होंने फिर से प्रणाम किया।

देवी मुरा फुसफुसाईं, "आपने ही…नन्द वंश के समूल विनाश की प्रतिज्ञा की है ?"

सिर झटककर खुली शिखा को आगे की ओर करते हुए चाणक्य ने कठोर स्वर से कहा, "हाँ ! और इसके लिए मुझे एक राजा चाहिए। वह तेरा पुत्र होगा ! तक्षशिला के विद्यालय में मैं उसे राजनीति की शिक्षा दूँगा, अर्थशास्त्र सिखाऊँगा। धरती को जैसा राजा चाहिए, वह मैं दूँगा, माँ ! चन्द्रगुप्त को मेरे साथ जाने दे !"

देवी मुरा ने गाल चन्द्रगुप्त के सिर पर रख दिया। उनकी आँखों से आँसू ढुलक पड़े।

"तेरा पति मौर्य मेरा मित्र था, आर्ये ! मेरे मन में उसकी हत्या का भी काँटा चुभा करता है। उसका बदला बेटा चन्द्र ही लेगा, और कोई नहीं। पर यह छोटी बात है। नन्दों का विनाश ही सब कुछ नहीं; उसे तो मैं जब चाहूँ, कर सकता हूँ। विनाश से कहीं कठिन है, निर्माण ! मैं संसार को वास्तविक राजा दूँगा ! और मेरे निर्माण का पात्र है, चन्द्रगुप्त। इसे तू अपने मोह से दबाकर छोटा मत बना ! इसका व्यक्तित्व विराट है ! इसके बैलों जैसे चौड़े कंधों का सहारा पाए बिना धरती

डगमगा रही है, मैं इसके सहारे उसे स्थिर करूँगा…"

देवी मुरा दाँतों से होंठ काटकर चाणक्य की बात सुनती रहीं, जैसे बहुत गहन-गम्भीर स्वर में आकाशवाणी हो रही हो, जिसका एक-एक शब्द मुरा के मन में धँसता जा रहा हो।

"मैं, विष्णुगुप्त चाणक्य, अर्थशास्त्र का आचार्य तुझसे दान माँग रहा हूँ, धरती के लिए एक राजा दे ! दे दे, माँ !"

देवी मुरा ने धीरे से बढ़कर चन्द्रगुप्त का हाथ चाणक्य के हाथों में थमा दिया और प्रतिमा की तरह निश्चल खड़ी रह गई।

"अब और देर नहीं !" चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के सिर पर वरद हस्त रखते हुए कहा, "चल वृषल, चल ! इसी रात मुझे पाटलिपुत्र की सीमा से दूर निकल जाना होगा। तेरा कल्याण हो, माँ !"

चन्द्रगुप्त ने देवी मुरा को झुककर प्रणाम किया ही था कि चाणक्य उसका हाथ पकड़कर लगभग खींचते हुए बाहर निकल गया।

६

रथ देवी मुरा के दरवाजे पर पहुँचकर रुक गया, पर उसमें लगी घंटियों की आवाज देर तक गूँजती रही, फिर भी कपाट बन्द ही रहे। आर्य शकटार ने अचरज-भरी दृष्टि से उस ओर देखा, फिर नीचे उतर पड़े। सारथी सामने आकर सिर झुकाए खड़ा हो गया, पर उसे कोई आज्ञा नहीं मिली। उपमहामात्य स्वयं ही उस छोटे-से घर की ओर बढ़े। आज हो क्या गया है ! इतनी देर हो गई ! हो सकता है, चन्द्रगुप्त अभी तक कहीं घूम रहा हो, पर घर में देवी मुरा तो होंगी ही। वह भी बाहर नहीं निकलीं !

उन्होंने कपाट पर धीमी-सी थपकी दी ही थी कि पल्ला अपने-आप खुल गया। भीतर दीये की मद्धिम-सी लौ टिमटिमा रही थी।

शकटार कुछ देर तक वहीं खड़े-खड़े आहट-सी लेते रहे, फिर उन्होंने धीरे से पुकारा, "चन्द्र !"

कोई उत्तर नहीं मिला। आगे बढ़कर वह आँगन में जा खड़े

हुए। कोने में काठ के आसन का सहारा लिए मुरा यों ही अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थीं। शकटार ने पुकारा, "आर्ये !···देवता कुशल करें, मैं शकटार हूँ !"

देवी मुरा ने धीरे से सिर उठाया। कुछ देर तक जैसे समझ ही न पाईं—वह कहाँ हैं, क्या देख रही हैं, कौन खड़ा है···

"देवि !" शकटार ने सशंक होकर कहा, "चन्द्र कहाँ है ?"

सहसा जैसे देवी मुरा सोते-सोते दुःस्वप्न देखकर चौंक पड़ीं; शकटार के चरणों पर गिरकर बोलीं, "वह गया, आर्य ! मेरे पास केवल वही तो बचा था, सब···उसे भी छीन ले गए···" उनकी सिसकियाँ बँध गईं।

"कौन ले गया उसे ?" शकटार की मुट्ठियाँ कस उठीं। उनका सारा शरीर दहकने लगा। पीछे हटकर पैर छुड़ाते हुए उन्होंने कमर में बँधे खड्ग की मूठ को जकड़ते हुए कहा, "जल्दी बताओ, देवि, वृषल कहाँ गया ?"

"राजा बनने !" देवी मुरा पागल की तरह हँसीं, पर उनके कण्ठ-स्वर में रोने की कँपकँपी थी ; बोलीं, "उसे राजा बनने की बड़ी आकांक्षा थी न, उसे राजा बनाने के लिए ले गए हैं··· धरती का पहला···वास्तविक राजा !"

आर्य शकटार की आँखें अँधेरे में चमक रही थीं ; बोले, "कौन ले गया ? बोलो, देवि, बोलो !"

"चाणक्य !"

"चाणक्य ?" आर्य शकटार चीख-से पड़े, "कहाँ थे आचार्य चाणक्य ? पाटलिपुत्र में वह कैसे ?"

देवी मुरा ने कहा, "आज साँझ को मेरे अतिथि बनकर आए थे, आर्य, और मुझ पर पता नहीं कैसा मन्त्र डालकर मेरे

चन्द्र को छीन ले गए। मैंने अपने हाथों उसे सौंप दिया, देव ! मुझे पता नहीं क्या हो गया था···चन्द्र को राजा बनाने के लिए उस पागल चाणक्य के हाथों मैंने बेटे को सौंप दिया···"

आर्य शकटार ने लम्बी साँस खींची। उन्होंने आँखें उठाईं, उत्तर में ध्रुवतारा अपने पूरे तेज से चमक रहा था। वह हँस पड़े ; बोले, "बेटे की ममता के कारण तुम धरती के सबसे महान् व्यक्ति को पागल कह रही हो, आर्ये ! आज तक चाणक्य का मूल्यांकन नहीं हुआ है। एक दिन आएगा, जब सारी धरती उसके नाम से जगमगा उठेगी तुम्हारा चन्द्र सचमुच के चन्द्रमा की तरह चमकेगा। तुम धन्य हो ! आज मैं निश्चिन्त हुआ··"

देवी मुरा को यों ही चकित छोड़कर वह चलने को तत्पर हो गए। पर द्वार तक पहुँचकर वह एकाएक फिर मुड़े; बोले, "तुम चन्द्र के लिए दुखी मत होना ! मेरी आँखें उस पर लगी रहेंगी ; उसे कोई दुख नहीं होने पाएगा। तुमको तो गर्व होना चाहिए कि आचार्य चाणक्य ने अपना स्वप्न साकार करने के लिए तुम्हारे बेटे को चुना ! सचमुच धन्य हो तुम !"

उपमहामात्य बाहर निकल आए; रथ पर बैठते हुए बोले, "महामात्य के यहाँ चल !"

सारथी ने अचरज से उनकी ओर देखा; फिर उसने चुपचाप संकेत किया और घोड़े दौड़ पड़े।

एकाएक आर्य शकटार को आया देखकर महामात्य राक्षस के भवन पर भी सब चकित रह गए। इतनी रात को बिना किसी सूचना के स्वयं उपमहामात्य कैसे ! चर सतर्क हो गए। द्वाररक्षक सूचना देने के लिए भीतर दौड़ा।

थोड़ी ही देर बाद कंचुकी पथप्रदर्शन करने लगी। अमात्य राक्षस अभी तक सोए नहीं थे; अपने कक्ष में बैठे कुछ विचार-

विमर्श कर रहे थे।

"महामात्य की जय हो !" आर्य शकटार ने आशीर्वाद दिया।

महामात्य राक्षस ने आसन छोड़कर उठते हुए पहले की तरह ही झुककर उन्हें प्रणाम किया। फिर अपने हाथों से उन्हें सहारा देकर आसन पर बैठाते हुए बोले, "इस समय आर्य ने इतना कष्ट उठाकर दर्शन दिया, चकित भी हूँ, आभारी भी···"

शकटार ने भूमिका नहीं बाँधी; बोले, "यों ही बैठे-बैठे जी ऊब रहा था, इसलिए मैं रात को घूमने निकल पड़ा। पर एक अद्‌भुत सूचना मिली, सोचा, आपके दर्शन कर लूँ।"

राक्षस ने उत्सुकता से पूछा, "कोई विद्रोह···"

"नहीं···हाँ, विद्रोह से कम नहीं है, वैसे। कल से ही विष्णु-गुप्त चाणक्य पाटलिपुत्र में था, आर्य !"

"था ?" राक्षस ने चौंककर पूछा, "अर्थात् अब नहीं है ?"

"हाँ, लगता तो ऐसा ही है।"

महामात्य राक्षस का संकेत पाकर प्रहरी भीतर आया।

"दमन को भेजो !"

प्रहरी ने कहा, "वह तो आर्य का दर्शन करने के लिए कब से प्रतीक्षा कर ही रहे हैं।"

"मैं जानता हूँ।"

दमन ने आकर बारी-बारी से उन्हें प्रणाम किया, फिर एक ओर खड़ा हो गया। राक्षस ने पूछा, "संवाद ?"

"हाँ, देव ! आज एक प्रहर रात गए ब्राह्मण विष्णुगुप्त पाटलिपुत्र से बाहर निकल गया।"

"कैसे ?" राक्षस का स्वर धीमा था, पर उसमें रोष की हुंकार स्पष्ट थी।

दमन ने कहा, "उसके साथ पन्द्रह-सोलह वर्ष का एक

किशोर था। दोनों उतनी रात गए विचित्र ढंग से नटों के करतब दिखाते हुए दक्षिणी द्वार पर पहुँचे। थोड़ी देर बाद वह पेट पालने के लिए एक-एक से धन माँगने लगे। उन्होंने वचन दिया था कि अभी वह एक विचित्र-सा खेल दिखाएँगे। वह किशोर बिना किसी आधार के आकाश में चढ़ जाएगा और वहाँ से एक अप्सरा के साथ लौटेगा···वे धन माँगते-माँगते बाहर निकल गए और द्वार के उस ओर पड़े यात्रियों के पास घूमने लगे। बड़ी देर हो गई तो सैनिक खोजने लगे, पर···"

"पर ?" महामात्य राक्षस कठोर हो गए।

दमन ने सहमकर कहा, "उनके चिह्न गंगा-तट तक मिले हैं। वे दोनों सम्भवतः गंगा पार करके वैशाली की सीमा में चले गए। गंगा के तट पर मगध के एक सैनिक का खून में डूबा शव मिला है···वह उनका पीछा कर रहा होगा···"

"हूँ···" महामात्य राक्षस उठकर देर तक अपने कक्ष में इधर-से-उधर टहलते रहे। फिर एकाएक आर्य शकटार के सामने रुककर बोले, "आपको चाणक्य के सम्बन्ध में कैसे पता चला, आर्य ?"

शकटार ने लम्बी साँस खींचकर कहा, "अपने साथ वह मेरे सम्बन्धी उस किशोर चन्द्र को ले गया है···"

"चन्द्र !" राक्षस चौंके।

"हाँ," शकटार ने कहा, "यदि उसने चन्द्र को वैशाली में छोड़ दिया तो ठीक है, वह अपने गाँव चला जाएगा। पर मेरे लिए यह कितने अपमान की बात हुई, आर्य! चन्द्र एकाएक गायब हो गया, वह तो हुआ ही, वह राजद्रोही ब्राह्मण उसी का सहारा लेकर भाग निकला, यह···"

राक्षस ने कहा, "आर्य ठीक सोचते हैं, पर इस समय आपको राजनीति के लिए असत्य बोलना पड़ेगा। आप सम्राट् को

सूचित करें कि चन्द्र के पिता की मृत्यु के कारण आपने उसे तुरन्त ही भेज दिया है…"

रुककर राक्षस ध्यान से उनकी ओर देखने लगे। बड़ी देर बाद शकटार ने कहा, "इसी में हमारा हित है।"

राक्षस ने प्रसन्न होकर कहा, "वैसे उस ब्राह्मण को मैं छोड़ूँगा नहीं, आर्य! और चाहे वह पाताल में ही छिपा हो, चन्द्र की खोज मैं करके ही रहूँगा।"

राक्षस की बात सुनकर शकटार मन-ही-मन काँप उठे। इस व्यक्ति की राज-निष्ठा और दृढ़ता से वह खूब परिचित हैं। मन-ही-मन उन्होंने शाप दिया—देवता तुम्हारा नाश करें! ऊपर से बोले, "मेरी चिन्ता का कुछ पार नहीं, आर्य, मैं बहुत अभागा हूँ।"

वह तुरन्त उठ खड़े हुए। इस व्यक्ति से उपमहामात्य मन-ही-मन डरते हैं। अधिक देर तक बैठना ठीक न समझकर बोले, "मैं चलता हूँ।"

राक्षस स्वयं उन्हें द्वार तक छोड़ने आए।

पता नहीं, कब किधर से होता हुआ शकटार का रथ घर पहुँचा। भीतर पहुँचते ही उन्होंने एक पत्र लिखा—

"आर्ये!

मैंने प्रबन्ध कर दिया है। आपका पुत्र वैशाली में अपने मृत पिता का शोक मनाने सकुशल पहुँच गया होगा।

—शकटार।"

अपने विशेष चर को पत्र देकर भेजने के बाद वह फिर आँगन में आ खड़े हुए—अब भी ध्रुवतारा अपनी ही जगह पर निश्चल खड़ा पूरे तेज के साथ दमक रहा था।

१०

वर्ष-पर-वर्ष बीत चले ।

पश्चिम की ओर भरत-खण्ड की संस्कृति और विद्या का गढ़ तक्षशिला था । चारों कोनों से दूर-दूर के विद्यार्थी वहाँ हर प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते । भगवान बुद्ध के जन्म से भी पहले तक्षशिला का महत्व बहुत बढ़ गया था । वहाँ के आचार्य अपने-अपने विषय के सबसे बड़े विद्वान् थे ।

अर्थनीति का आचार्य चाणक्य अपनी शाला में अकेले ही बैठा कुछ सोच रहा था। सहसा चन्द्रगुप्त हाँफता हुआ भीतर आया ; बोला, "सर्वनाश हो गया, भगवन् !"

चाणक्य ने प्रश्नभरी दृष्टि उठाई ; "क्या हुआ ?"

"यवनों की सेना सीमा पर अड़ी हुई है । इधर गान्धार के युवराज आम्भि ने सचमुच उसे अपना स्वामी मान लिया । वह कितने ही मूल्यवान उपहार लेकर स्वयं ही सिकन्दर के शिविर में उससे मिलने गया है ।"

एकाएक वह चुप हो गया । चाणक्य के काले चेहरे पर

उसकी लाल-लाल आँखें अंगारों की तरह दहक रही थीं। सिर नीचा करके चन्द्रगुप्त स्तब्ध खड़ा रह गया।

सिर हिलाकर चाणक्य जोर से हँसा ; बोला, "विनाश के बाद फिर से निर्माण होता है।...तू डरता है, वृषल ?"

चन्द्रगुप्त ने कहा, "डरता नहीं, आर्य, मैं डरता किसी से नहीं। यदि आज्ञा हो तो सिकन्दर के शिविर में पहुँचने से पहले ही नोच आम्भि का वध कर दूँ !"

"तू दुस्साहसी है !" चाणक्य हँसा, "कुछ भी हो, दुस्साहसी कायर से तो अच्छा ही होता है ..पर तू ऐसा कुछ भी नहीं करेगा, वृषल ! चुपचाप देखता चल, समय करवट ले रहा है।"

चन्द्रगुप्त ने मान के साथ कहा, "समय करवट ले रहा हो और मैं चुप बैठकर ताकता रहूँ, इससे बढ़कर कायरता क्या होगी ! फिर भी आचार्य की आज्ञा मानने का वचन दे चुका हूँ, इसलिए निभाऊँगा ही।"

वह मन मारकर धीरे-धीरे बाहर की ओर चला।

कुछ देर तक चाणक्य उसे ध्यान से देखता रहा, फिर एका-एक पुकार उठा, "सुन, वृषल, इधर आ !"

लौटकर चन्द्रगुप्त उसके पास खड़ा हो गया।

"मैं पाटलिपुत्र जाना चाहता हूँ। शीघ्र ही।"

"इस समय ? सीमा पर विदेशी यवनों का आक्रमण हो चुका है। उसे संकट में छोड़कर..."

चाणक्य ने कहा, "संकट में छोड़कर ? मैं यहाँ रहकर ही क्या करूँगा, चन्द्र, मेरे रहने पर भी तो यह संकट बना ही रहेगा !" दो पल रुककर चाणक्य ने हँसते हुए कहा, "तू बड़ा चतुर हो गया है। कहीं तेरा मतलब यह तो नहीं है कि मैं इस संकट से डरकर मगध जा रहा हूँ ?"

"नहीं, आर्य, नहीं।" चन्द्रगुप्त झेंपकर चाणक्य के पैरों को छूते हुए बोला, "मैं तो केवल इसलिए कह रहा था कि ऐसे समय आपके यहाँ रहने पर हमें कितने ही राजनीतिक दाँव-पेंच और हलचलों की जानकारी होती !"

"मेरे जाने का यह भी एक कारण है।" चाणक्य बोला, "देख, तू अब चतुर हो गया है। सीखता ही रहेगा, कुछ करेगा नहीं ? हाँ, एक बात बता, चन्द्र, क्या तू सचमुच आम्भि की राजनीति नहीं समझा ?…बैठ जा !"

चन्द्रगुप्त बैठते हुए बोला, "मुझे तो ऐसा लगता है, आर्य, आम्भि अपने पड़ोसी पुरु की बढ़ती हुई शक्ति देखकर चिन्तित है। वह चाहता है कि युवराज की सहायता से उसे तोड़कर अपने राज्य का विस्तार करे।"

चाणक्य प्रसन्न हो गया ; बोला, "आम्भि के पास यही एक सहारा है। ऐसा नहीं करेगा तो मारा जाएगा। तू ठीक समझा है। अब ऐसा कर, मैं मगध जाता हूँ, जब तक मैं नहीं लौटता, तब तक तू सैनिक के रूप में यवन सेना में चला जा !"

"आचार्य !"

"हाँ !" चाणक्य ने दृढ़ स्वर में कहा, "वहाँ अवसर देखकर यवनराज को मगध पर आक्रमण करने के लिए भी ललकार !"

चन्द्रगुप्त को जैसे काठ मार गया। वह कुछ देर सूनी आँखों से चाणक्य की ओर देखता रहा, जैसे उनकी बात पर विश्वास ही न हो रहा हो, फिर एकाएक घृणा के साथ बोला, "यवनों के साथ अपने देश के सैनिकों का वध करूँ और अवसर पाकर मगध पर भी आक्रमण कराऊँ, इस आशा में कि यवनराज मुझे राजा बना दे ? क्षमा करें, आचार्य, आम्भि नीच है, मैं उसकी नीति कभी नहीं अपना सकता, चाहे जीवन-भर यों ही भटकता रहूँ।"

मुस्कराकर चाणक्य ने उसके कन्धे थपथपाए ; बोला, "तू सचमुच दुस्साहसी है, वृषल, कभी-कभी तो मुझे भी तुझसे डर लगता है। मैंने तुझे यह सब करने को कब कहा ?...सुन, तुझ पर अपने देश पर आक्रमण करने का कलंक नहीं लगेगा । मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि तू किसी बहाने यवनों की सेना, उनके संगठन और उनका युद्ध-कौशल भी सीख ले । जब तक तू पूरी तरह कुछ हो नहीं जाएगा, तब तक यवनराज सिकन्दर जैसा कुशल सेनानी तुझे कभी युद्धभूमि में नहीं ले जाएगा । इस प्रकार बिना अपने देशवासियों से युद्ध किए ही तू यवन युद्ध-कला सीख सकता है ।"

चन्द्रगुप्त ने प्रणाम करते हुए कहा, "आचार्य का मुझ पर अपार स्नेह है ।"

"तो इतना ही बहुत है। मेरे दूसरे आदेश का पालन तू अवसर देखकर ही करेगा । मुझे तुझ पर विश्वास है !"

"हाँ, ऐसा अवसर मिलते ही मैं यवनराज सिकन्दर को पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए ललकारूँगा, जब वह साहस करे ही नहीं..."

चाणक्य हँसा ; बोला, "तू आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान है, वृषल, मुझे सचमुच तुझसे डर लगने लगा है ।"

कुछ देर चुप्पी छाई रही, फिर चाणक्य अचानक ही उठ खड़ा हुआ ; बोला, "अच्छा तू अपने लिए युक्ति कर, मैं चलता हूँ ।"

"आज ही ?"

"अभी !" चाणक्य ने कहा और उठ खड़ा हुआ ।

चन्द्रगुप्त वहाँ बड़ी देर तक अकेला ही बैठा जाने क्या-क्या सोचता रहा, फिर सहसा उठकर बाहर चल पड़ा । अभी थोड़ी ही देर पहले वह नगर में यहाँ-वहाँ घूमकर लौटा था ।

राजकुमार आम्भि के साथ ही यदि वह यात्रा कर पाता तो आसानी होती, पर अब समय नहीं रह गया है। सेना के साथ ऐसे ही जाने पर संकट में पड़ सकता है। राजा आम्भि उसे पहचानता है। तक्षशिला में आचार्य चाणक्य के प्रिय शिष्य को कौन नहीं जानता ! एकाध बार तो चन्द्रगुप्त ने आम्भि की आँखों में ईर्ष्या के भाव भी देखे थे। चाणक्य ने उसे सावधान भी किया था, "इस राजकुमार से जरा बचकर रहना, वृषल !"

"मैं उससे डरूँ, आचार्य ?" चन्द्रगुप्त ने हँसकर पूछा था।

"नहीं, वह तुझसे डरता है, यही तो चिन्ता की बात है ! तू उससे डरता होता तो मुझे यह कहना ही नहीं पड़ता।"

आचार्य की बहुत-सी बातें चन्द्रगुप्त की समझ में नहीं आतीं। उनकी अद्भुत शक्ति देखकर लोग चकित रह जाते हैं। किसी को पता भी नहीं चलता कि चाणक्य उन पर धीरे-धीरे छाया जा रहा है, पर एक दिन वह आदमी बदल जाता है। स्वयं चन्द्र भी जब अपने सम्बन्ध में सोचता है तो आश्चर्य में पड़ जाता है। पता नहीं कब चाणक्य ने उसे एकदम बदल डाला था। तब का वह नटखट किशोर, जो किसी भी क्षण मनमानी कर डालता था, अब वह पता नहीं कहाँ चला गया है।

उस रोज दिन-भर यहाँ-वहाँ भटकते रहकर चन्द्रगुप्त साँझ को लौटा और रात को बाहर जाने की तैयारी करने लगा। साथ में कुछ भी नहीं ले जाना है, फिर भी वह आचार्य की कुटी और अपने निवास को एक बार ठीक से देख लेना चाहता था। कहीं कुछ ऐसी वस्तु न रह जाए, जिससे उनका भेद खुले। अब पता नहीं वह यहाँ लौटकर आ भी पाएगा या नहीं।

किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर वह चकित रह गया। आचार्य की कुटी एकदम खाली पड़ी थी, जैसे वहाँ महीनों से कोई रहता ही न हो। और उससे भी अधिक आश्चर्य उसे तब हुआ, जब

उसने अपनी कुटी की भी वही दशा देखी। कुछ देर तक वह चकराया-सा खड़ा रह गया। कहीं किसी को उन पर सन्देह तो नहीं हो गया ? क्या राजा की आज्ञा से···

उसकी दृष्टि कोने में पड़ी। वहाँ एक बड़ा-सा खड्ग लटका था। उसने तुरन्त बढ़कर उतार लिया। उसकी लपलपाती हुई धार देखकर चन्द्रगुप्त की आँखें चमक उठीं। यहाँ किसने रख दिया इसे ? मूठ के पास हाथ पहुँचते ही उसे लगा, भोजपत्र की एक छोटी-सी पट्टी लिपटी है। जल्दी से उसे खोलकर चन्द्रगुप्त ने पढ़ डाला, "शस्त्र से शत्रु नहीं मित्र बनाने चाहिएँ, जिनकी सहायता से शत्रुओं का विनाश हो !"

चन्द्रगुप्त प्रसन्न हो उठा। तुरन्त ही उसकी समझ में सब कुछ आ गया। जाते-जाते आचार्य चाणक्य ने उसे हर प्रकार से निश्चिन्त भी कर दिया था, साथ ही नीति भी सिखा गए थे।

उसने खड्ग सँभाला और जरा भी देर किए बिना बाहर निकल पड़ा।

नदी के तट पर सिकन्दर की विशाल सेना ने पड़ाव डाल रखा है। वहाँ पहुँचकर अभी तो किसी प्रकार सैनिक के रूप में प्रवेश पाना ही होगा। फिर अवसर खोजकर धीरे-धीरे अपने लिए राह बनानी होगी। इस बीच आचार्य मगध में कुछ-न-कुछ नया कर ही डालेंगे। क्या ? इसे शायद आचार्य के सिवा कोई नहीं जानता। उनकी कूटनीति को समझ पाना किसी के लिए भी कठिन है।

तक्षशिला के कितने ही आचार्य और महापण्डित तो आचार्य चाणक्य को भगवान् कौटिल्य कहकर आदर से प्रणाम करते हैं। उस दिन यवनराज सिकन्दर के आक्रमण की बात सुनकर सभी उत्तेजित थे। बड़ी देर तक वाद-विवाद चलता रहा। पता नहीं कितने अनुमान लगाए जा रहे थे। तब आचार्य चाणक्य ने सहसा

कहा था, "इस समय जो स्थिति चल रही है, उसके अनुसार तक्षशिला के राजा सिकन्दर से युद्ध करने में समर्थ हैं, फिर भी मेरे विचार से यह युद्ध यहाँ नहीं होगा···यह होगा कुछ और आगे बढ़कर वितस्ता के तट पर !"

"क्यों ? तक्षशिला को क्या आप कायर समझते हैं ?" तक्षशिला के ही प्रतिष्ठित सामन्त देवदत्त ने कुछ उत्तेजित होकर कहा था।

आचार्य चाणक्य ने हँसकर कहा, "सामन्त क्रोध न करें। मैं किसी को कायर नहीं कहता। पर नीति को देखकर चलें और हर स्थिति पर विचार करें तो समझ जाएँगे। इस समय उत्तर-पश्चिम के इस भाग में कितने ही गणतन्त्र तथा राजा हैं। तक्षशिला उन सब में बढ़ा-चढ़ा है। फिर भी राजा आम्भि अकेले ही सबको नहीं दबा सकता। यदि कोई आँधी आकर बाकी शक्तियों को दबा दे, तो उन्हें तोड़ पाना सहज हो जाएगा। इसलिए तक्षशिला का राजा अपने-आपको कुचलने से बचाकर औरों को दबाने की ही युक्ति रचेगा।"

"पर···पर यह तो···"

चाणक्य ने सामन्त की ओर देखकर हँसते हुए कहा, "कभी-कभी कुछ बातों को न कहना, कह देने से भी अधिक अच्छा होता है।"

और जिस दिन प्रजा को पता चला कि राजा आम्भि ने सिकन्दर से युद्ध करने की जगह उससे मित्रता करने का निर्णय किया है, उसी दिन सन्ध्या को आकर सामन्त देवदत्त ने आचार्य के चरण छूते हुए कहा था, "भगवान् कौटिल्य, तुम्हें तो किसी साम्राज्य का महामात्य होना चाहिए। तुम्हारी शोभा वहीं है।"

चन्द्रगुप्त की ओर देखकर चाणक्य हस पड़े; बोले, "सामन्त,

हर व्यक्ति के मन में कितने ही सपने उभरते हैं, पर वह सपने तब तक पूरे नहीं होते जब तक चन्द्र पर ग्रहण लगा रहे।''

चन्द्रगुप्त जानता है कि सामन्त देवदत्त कौटिल्य की बात नहीं समझ पाए। उन्होंने सोचा होगा कि चाणक्य ज्योतिष के विद्वान् तो हैं ही, शायद उसी के सम्बन्ध में ग्रहों के प्रभाव की बात कर रहे हैं। पर स्वयं चन्द्रगुप्त समझ गया था कि आचार्य का संकेत उसी की ओर था। उसने मन-ही-मन कौटिल्य को प्रणाम किया और प्रतिज्ञा की, एक दिन अपने ऊपर लगे ग्रहण को चीरकर वह पूरी आभा के साथ आकाश पर चमकेगा। भगवान् कौटिल्य का आशीर्वाद-भर साथ रहे।

११

मगध के उपमहामात्य आर्य शकटार की सहायता मिलती रहने के कारण चाणक्य को किसी प्रकार की असुविधा नहीं थी। जितने भी धन की आवश्यकता पड़े, चाणक्य को उसके लिए किसी और का सहारा नहीं लेना पड़ता था। मगध के किसी भी भाग में चाणक्य छिपकर रह सकता था। वैसे भी शकटार स्वयं ही चाणक्य की कूटनीति देखकर चकित रह जाते।

मगध पहुँचकर चाणक्य उपमहामात्य शकटार के साथ मिल-कर एक-एक कड़ी जोड़ने लगा। गुप्तचरों को तरह-तरह के काम सौंपे गए। चाणक्य की नीति के कारण किसी भी गुप्तचर को कभी पूरी बात नहीं मालूम होती थी। वह एक बहुत बड़े यन्त्र के छोटे-से पुरजे के समान था। अपने काम-भर का ही उसे पता होता था। उसके अतिरिक्त कोई और भी है या कोई और भी काम होता है, इसे कोई न जान पाता।

शकटार यह सब देखकर आश्चर्य में पड़ जाते। एकाध बार उन्होंने चाणक्य से भी पूछा, "अपने विरुद्ध प्रचार करने के लिए

भी अपना गुप्तचर रखने का क्या तात्पर्य है ?"

चाणक्य ने हँसकर कहा, "गुप्तचर राजा की आँख है, और ऐसी आँख है जो स्वयं राजा पर भी लगी रहनी चाहिए। कूटनीति की यही सफलता है। यदि राजा जरा भी फिसला तो सारा यन्त्र भरभराकर गिर पड़ेगा।"

धीरे-धीरे चाणक्य ने कितने ही गुप्तचर रख लिए। कोई जैन श्रवण बन गया, कोई नट या सँपेरा बनकर दिन-भर खेल दिखाते हुए नागरिकों का मनोरंजन करने लगा और कोई सैनिक बनकर सेना में चला गया। चाणक्य एक साथ कितना बड़ा काम करना चाहता है ?

शकटार को फिर से विश्वास होने लगा। उनका मन इन दिनों मुरझाया-मुरझाया-सा लगता। नन्द वंश का नाश करने की प्रतिज्ञा वह प्रतिदिन तीन बार दुहराते। उस समय उनकी आँखों के सामने पीले, मुरझाए, भूख से तड़पते परिवार का दृश्य उभर आता। जब तक नन्द का नाश नहीं कर लेंगे, उन्हें शान्ति नहीं मिल सकती।

पिछले कितने समय तक चन्द्र को साथ लेकर चाणक्य गायब रहा। कुछ पता ही न चला। तब शकटार को लगता था कि उन्होंने भूल की है। किसी का भी सहारा लेकर चुप बैठे रहना उनकी कायरता है। वह बदला लेने का कोई उपाय नहीं कर रहे हैं· तभी सहसा चाणक्य का सन्देश मिला। वह मगध आ गया था। उसे अपनी प्रतिज्ञा याद थी। उसकी आँखों की लाली कम नहीं हुई थी। उसकी नागिन जैसी शिखा अब भी खुली पड़ी थी···

शकटार ने पूछा, "चन्द्र कहाँ है, आचार्य ?"

"वह भी यन्त्र के एक अंश की तरह अपने काम में लगा है।"

"बिना उसके यहाँ बाधा तो नहीं पड़ेगी ?"

चाणक्य ने कठोर होकर उत्तर दिया, "कोई भी न रहे, तो भी चाणक्य को बाधा नहीं रोक सकती !"

शकटार उसकी जलती हुई आँखों से सहम-से गए। उसकी ओर देखते पता नहीं कैसा भय लगता है। कहीं यह कोप न जाए। कितने ही वर्षों तक मगध का विशाल साम्राज्य सँभालने वाले शकटार भी इस क्रोधी ब्राह्मण से डरते हैं। वह चुप रहे।

"आपकी वह दासी कहाँ है ? वही विचक्षणा ! अब भी वह राजभवन में प्रवेश कर सकती है ?"

शकटार ने कहा, "प्रवेश क्या, अब तो वह फिर से सम्राट् की सेवा में रख दी गई है ! स्वयं सम्राट् को एक दिन हाथ धोते-धोते उसकी याद आ गई। उसी समय बुलाने की आज्ञा मिली..."

कुछ देर बाद उन्होंने कहा, "महामात्य राक्षस ने केवल इतनी-सी बात के लिए मुझसे आकर क्षमा माँगी ; बोले, उसके बिना आपको कष्ट तो होगा ही।" शकटार हँस पड़े। "राक्षस जैसा नम्र व्यक्ति संसार में नहीं है। मैंने ही उसे अपने साथ अमात्य नियुक्त करवाया था। आज तक वह आभारी है। पर जितना बुद्धिमान है, उतना ही बड़ा स्वामिभक्त..."

"और उतनी ही बड़ी बाधा !" चाणक्य ने सिर हिलाते हुए कहा।

शकटार का हृदय धक् से रह गया ; बोले, "आचार्य, कहीं आप उसको भी नष्ट तो नहीं करना चाहते ?"

"आर्य को उससे मोह है ?"

शकटार की आँखें गीली हो गईं।

चाणक्य मुस्कराया, "मैं नन्द का शत्रु हूँ, पर उसके नाश में

यदि कोई भी बाधा बना, तो उसको भी नष्ट करते समय किसी के आँसू चाणक्य को नहीं रोक सकेंगे।"

शकटार होंठ काटकर रह गए। उन्हें बोलने का अवसर दिए बिना चाणक्य ने पूछा, "विचक्षणा से मिल सकते हैं?"

"वह मेरे लिए प्राण देने को भी तत्पर है।"

"प्राण देना नहीं, लेना है!" चाणक्य बुदबुदाया।

शकटार को लगा, जैसे यह व्यक्ति पागल है।

"मैं उसे देखना चाहता हूँ।" चाणक्य ने उठते हुए कहा, "जिस दिन भी, जिस समय भी उसे सुविधा हो।"

"कहाँ?"

तुरन्त ही चाणक्य ने कहा, "किसी भी जगह···जहाँ या तो एकदम सुनसान हो या खूब भीड़-भाड़।" वह तेजी से चला गया।

शकटार एकटक उसे देखते रह गए। इस साधारण, कुरूप, काले ब्राह्मण के भीतर ज्वालामुखी कैसे बन गया है?

वह उठकर उपाय में लग गए।

११

लगभग एक सप्ताह बाद।

साँझ के धुँधलके में चाणक्य भीतर आ खड़ा हुआ। शकटार ने उठकर स्वागत करते हुए पूछा, "वह मिल गई थी न ?"

"हाँ।"

चाणक्य ने पल-भर सोचकर कहा, "मैंने सब कुछ निश्चित कर लिया है। आप निश्चिन्त रहें ! मेरी प्रतिज्ञा और आपका प्रतिशोध पूरा ही होने वाला है।"

"सच !" शकटार की आँखें अँधेरे में चमक उठीं। उन्होंने चाणक्य की ओर इस प्रकार देखा, जैसे वह संसार की सारी निधियाँ उसे सौंप देने के लिए आया हो। "कब ?" उन्होंने उत्सुक होकर पूछा।

"बस, एक व्यक्ति की प्रतीक्षा है···यहीं, अभी आता ही होगा।"

"यहाँ ?" शकटार ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, आप चिन्ता न करें। हमारे गुप्तचर सतर्क खड़े हैं।

आप पर कोई संकट नहीं आएगा।"

शकटार हँस पड़े, "संकट ? शकटार पर और भी कोई संकट आ सकता है, आचार्य ? कुछ और भी शेष है ?"

चाणक्य की आँखों में शकटार को पहली बार करुणा-सी झाँकती दिखाई पड़ी। इस व्यक्ति के शरीर की एक भी रेखा कोमल नहीं है, पर उसकी करुण दृष्टि के कारण जैसे शकटार का मन भर आया। उन्होंने सिर झुका लिया।

"यदि प्रतिशोध लेने में कोई बाधा आए तो वही आपका सबसे बड़ा संकट होगा।"

शकटार आँखें फाड़-फाड़कर चाणक्य को देखने लगे। उन्हें विश्वास नहीं आया। उन्हें भ्रम हो गया था। चाणक्य की आँखों से करुणा नहीं, आग ही टपक रही थी। ठीक ऐसे ही, जैसे इस समय उसकी आँखें दहक रही हैं। वह चुपचाप हथेली में मुँह छिपाकर बैठे रहे।

कक्ष में चाणक्य बड़ी देर तक इधर-से-उधर टहलता रहा ; एकाएक रुककर बोला, "आपके सम्राट् की इच्छा पूरी नहीं हो सकी न ?"

"कैसी इच्छा ?"

"युद्ध की।" चाणक्य मुस्कराया, "यवनराज सिकन्दर पूर्व की ओर नहीं आ रहा है, उधर से ही लौट गया। उग्रसेन नन्द की इतनी बड़ी सेना का नाम सुनकर ही उसके सैनिक डर गए।"

शकटार ने कहा, "इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमारे सम्राट् के दम्भ को तो तृप्ति मिली ही। वह बहुत प्रसन्न हैं। उनके भय से सारे संसार को जीतने की प्रतिज्ञा करने वाला प्रचण्ड सेनापति सिकन्दर भी रास्ते से लौट गया, इससे बढ़कर सुख की बात क्या हो सकती है !"

चाणक्य ने ठमककर पूछा, "आपका क्या विचार है ? पारस-सम्राट् दारा महान् जैसे प्रतापी की लाखों सैनिकों की सेना को भी जिस विजेता ने कुचलकर रख दिया, और जिसने केवल डेढ़ वर्ष में ही गान्धार के उस छोर से लेकर कान्यकुब्ज तक की धरती को रौंद डाला, वह सचमुच केवल नन्द के भय से लौट गया ?"

"मैं आपका आशय नहीं समझा, आचार्य ?"

"मगध में बैठे-बैठे उसे समझा भी नहीं जा सकता।" चाणक्य मुस्कराया, "फिर साम्राज्य के गुप्तचर भी तो इतने कुशल नहीं हैं !"

क्षण-भर रुककर चाणक्य बोला, "वस्तुतः हमारे गुप्तचरों ने वहाँ बहुत बड़ा प्रचार किया। यहाँ के एक-एक व्यक्ति को पर्वतों से टक्कर लेने वाला बताया, यहाँ के एक-एक हाथी को पहाड़ों जैसा बताया। यवन सैनिक पंचनद प्रदेश के वीरों से लड़ चुके थे। वर्षों से वे मारे-मारे फिर रहे हैं, घर-बार का कुछ भी पता नहीं। उनको जब मगध में निश्चित मृत्यु दिखाई पड़ी, तो एकदम लौट जाने के अतिरिक्त चारा ही क्या था ?"

"पर आपने ऐसा क्यों किया, आचार्य ?"

"क्यों किया ? इसलिए कि मेरा शत्रु मगध-राज है, मगध की प्रजा नहीं, इसलिए कि यवन ही नहीं मगध के सैनिक भी बेचारी प्रजा पर अत्याचार करते और इसलिए कि नन्दों के बाद आने वाले राजा को भी हरे-भरे देश पर शासन करना है, श्मशान पर नहीं।"

शकटार हँसे, "वह तो मैं समझ रहा हूँ, पर वहाँ इतने गुप्तचर..."

"इतने गुप्तचर रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी वहाँ। मैंने कुछ नीतियों का ही प्रचार करा दिया। चन्द्रगुप्त वहाँ था ही।

विदेशी सैनिकों को डरते देख धीरे-धीरे वहाँ की प्रजा ने अनजाने ही मेरी नीति अपना ली। दिग्विजेता सिकन्दर को भ्रम में नहीं डाला जा सकता था, पर जब प्रजा में हर जगह एक ही चर्चा हो तो बेचारे विदेशी सैनिकों को विश्वास क्यों न होता ? वे पहले से ही दुखी थे, इसलिए इस उपाय का प्रभाव और भी पड़ा। कुछ हजार सैनिकों से टकराकर वह देख ही चुके थे। अब उनसे भी बलशाली लाखों सैनिकों से युद्ध करने की कल्पना से वह काँप उठे। किसी और की इच्छा पूरी करने के लिए मृत्यु से लड़ना किसी को अच्छा भी तो नहीं लगता !"

"संसार के सबसे बड़े विजेता को भी अच्छा नहीं लगा।" अचानक चन्द्रगुप्त ने प्रवेश करते हुए कहा, "प्रणाम स्वीकार हो, भगवन् ! आर्य शकटार को भी चन्द्रगुप्त का प्रणाम !"

शकटार ने उठकर उसे आशीर्वाद दिया ; बोले, "एकदम बदल गए हो। सचमुच लगता है कि तुमने आचार्य चाणक्य का स्वप्न पूरा करने के लिए ही जन्म लिया था…"

"जल्दी-जल्दी वहाँ की सूचना दो, वृषल ! समय नहीं है।" चाणक्य ने बीच ही में टोक दिया।

चन्द्रगुप्त ने बताया, "सब कुछ आपकी इच्छा के अनुसार ही होता रहा, पर इतना मानना ही पड़ेगा, भगवन्, कि सिकन्दर प्रतापी है। उसकी वीरता देखकर, उसका युद्ध-कौशल देखकर उस पर श्रद्धा होती है।"

"इसी श्रद्धा के कारण तो वह विश्वविजेता बनता जा रहा था, वृषल !" चाणक्य ने सिर हिलाते हुए पूछा, "और…और कुछ ?"

"हाँ, मैंने विजेता सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने के लिए ललकारा था।"

"तुमने ?" शकटार का चेहरा तमतमा उठा। वह सीधे

तनकर खड़े हो गए, "कल ही हमें यह सूचना मिली कि कुछ दिन पहले पूर्व के ही किसी युवक ने सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने के लिए उकसाया था।"

"आर्य शकटार शान्त हों!" चाणक्य ने सतर्क होकर कहा। उनकी दृष्टि चन्द्रगुप्त की ओर उठी। चन्द्रगुप्त का हाथ खड्ग की मूठ पर पड़ा था। चाणक्य ने मुस्कराकर कहा, "फिर··· आगे क्या हुआ, वृषल?"

"और क्या होता! सारी सेना हठ पर अड़ गई थी। उन्होंने कह दिया था, चाहे देवता जुपिटर का बेटा सिकन्दर स्वयं ही सेना के आगे-आगे चले, हम आगे नहीं बढ़ेंगे, नहीं बढ़ेंगे। ठीक उसी समय मैं सामने आया। मैंने सिकन्दर को ललकारकर कहा, मगध को पराजित किए बिना लौटना विजेता का अपमान है! और मगध के पराजित होते ही विश्वविजय का मार्ग खुल जाएगा! यवन-सम्राट् के प्रताप से तो सारी धरती काँपती है··"

"वृषल, तू स्तुति कर रहा था या निन्दा?"

चन्द्रगुप्त हँसा, "सिकन्दर ने उसे ठीक-ठीक निन्दा ही समझा। उसने एक दृष्टि अपने सामने खड़ी सेना पर डाली। उसका चेहरा अपमान से काला पड़ गया। फिर उसने कोपकर मुझे बन्दी बनाने की आज्ञा दी, पर मैं सावधान था। सेनापति सिल्यूकस के खड्ग को एक ही वार में गिराता हुआ मैं भारतीय सैनिकों की टुकड़ी में जाकर लुप्त हो गया।"

"सिकन्दर तुम्हें पकड़वा नहीं सका?" शकटार ने उत्सुकता से पूछा।

"मैं पकड़ा नहीं गया। सिकन्दर अपमान सह नहीं पाया। उसने जाकर अपने-आपको शिविर में बन्द कर लिया। कई दिन तक वहीं पड़ा रहा, फिर भी कुछ न हुआ। हारकर उसे लौटने

की आज्ञा देनी ही पड़ी। मैंने अवसर पाते ही शिविर छोड़ दिया।"

"तुमने इस अपमान का…" चाणक्य ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त ने तुरन्त कहा, "दिग्विजेता अपने अपमान का बदला नहीं ले सका, पर मैंने उसे छोड़ा नहीं। शिविर छोड़कर पहले तो मैं भटकता रहा। मुझे भय था कि लोग मेरा विरोध करेंगे क्योंकि मैंने सिकन्दर को आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था। मैं सोचता था, प्रजा इससे अप्रसन्न होगी पर मैंने सहसा सुना कि…"

"कि चारों ओर तुम्हारी प्रशंसा हो रही थी। हर व्यक्ति तुम्हारे साहस की प्रशंसा कर रहा था। हर जगह तुम्हारी चर्चा हो रही थी कि तुम सिकन्दर को इसलिए मगध की ओर ले जाना चाहते हो, जिससे विजेता यवनराज जीवित न लौट सके।"

चन्द्रगुप्त ने आश्चर्य से पूछा, "आप मगध में थे या पंचनद प्रदेश में, आर्य! आपको यह सब कैसे मालूम हो गया? सचमु॰ प्रजा मेरा बड़ा आदर करती थी।"

"आदर करना ही चाहिए, चन्द्र! यदि सिकन्दर तेरी बात मानकर यहाँ आ ही जाता, तो मगध में ही उसकी समाधि बनती।" चाणक्य ने हँसकर कहा, "नहीं आया तो भी अच्छा ही रहा। सारा पंचनद उसका भय देखकर उसके आतंक से उबर गया।"

चन्द्रगुप्त ने मन-ही-मन चाणक्य को प्रणाम किया; बोला, "मैंने दिग्विजेता का भेद खोल दिया है। मैंने वहाँ सबको बता दिया है कि सिकन्दर न देवता है, न देवता जुपिटर का बेटा; वह एक साहसी मनुष्य-भर है, जिसे वैसा ही साहसी योद्धा पछाड़

सकता है। इस समय पंचनद प्रदेश में विद्रोह की आग सुलग रही है। सिकन्दर ने वहाँ का शासन तीन व्यक्तियों को सौंपा है, महाराज पुरु को, आम्भि को और अपने एक सेनापति फिलिप को। पुरु और आम्भि का तनाव अब भी कम नहीं हुआ है। उनके राज्य कुछ बड़े जरूर हो गए हैं। रह गया फिलिप, उसकी क्या गति होगी, कौन जाने…"

"तू, वृषल ! उसकी क्या गति होगी, यह तुझे जानना चाहिए।" चाणक्य की तीखी दृष्टि चन्द्रगुप्त की आँखों में चुभनें-सी लगी।

उसने सिर झुकाकर कहा, "पर उसी समय मुझे आचार्य का सन्देश मिला और मैं मगध चला आया।"

"तुझे फिर वहाँ जाना पड़ेगा। अभी नहीं ; पर जल्दी ही !"

चाणक्य कुछ देर इधर-उधर टहलता रहा, फिर एकाएक बोला, "पहले मेरी यह शिखा बँध जाए, तब ! आर्य शकटार प्रसन्न हों ! वह क्षण निकट आ गया है…बहुत निकट…आज ही !"

"भगवान् कौटिल्य !" शकटार आवेश सँभाल न पाने के कारण हृदय थामकर आसन पर बैठ गए।

१३

रात का तीसरा पहर बीत चला था। चारों ओर गहरा अँधेरा। आकाश में घटाएँ तेजी से इधर-उधर भाग रही थीं, जिससे अँधेरा और बढ़ गया था। ठीक उसी समय घोड़े की तेज टापें सुनाई पड़ीं।

महामात्य राक्षस के भवन के चारों ओर खड़े प्रहरी चौकन्ने हो गए। पलक झपकते एक घोड़ा द्वार पर आ रुका। उस पर से उतरकर घुड़सवार ने द्वारपाल के पास पहुँचकर एक पत्र दिखाया, जिस पर महामात्य राक्षस की मुद्रा अंकित थी।

द्वारपाल ने तीन पग पीछे हटकर प्रणाम किया; बोला, "क्या आज्ञा है ?"

"महामात्य से निवेदन करो कि दमन तुरन्त मिलना चाहता है, इसी क्षण !"

द्वारपाल भीतर गया; थोड़ी ही देर बाद लौटकर बोला, "आर्य प्रतीक्षा कर रहे हैं;"

दमन भीतर जाने को लपका, फिर एकाएक ठिठककर बोला,

"महामात्य का रथ तैयार रखो !"

और सचमुच कुछ ही पल बाद दमन के साथ-साथ अस्त-व्यस्त वस्त्र पहने ही महामात्य राक्षस बाहर आए। उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। रह-रहकर वह ठमक जाते, जैसे कदम उठाने का भी साहस न रह गया हो।

उन्हें सहारा देकर रथ पर बैठाने के बाद दमन उछलकर घोड़े पर सवार हो गया और सारथी को आज्ञा दी, "मेरे साथ आओ !"

अँधेरी रात का भयानक सन्नाटा घोड़ों की टापों और रथ के पहियों की घरघराहट के कारण जैसे और भी भयानक हो गया था।

राजभवन में प्रवेश करके रथ आँगन में ही रोक दिया गया। दमन के पीछे-पीछे डगमगाते पैरों से राक्षस महाराज के शयनागार के सामने जा पहुँचे। भीतर प्रवेश करते समय लगा कि उनका हृदय बाहर निकला आ रहा है।

दमन ने द्वार पर पड़ा पर्दा हटाया। आर्य राक्षस ने देखा—सामने ही शय्या पर सम्राट् की देह उलटी पड़ी है और उनके चरणों के पास ही महारानी अचेत पड़ी हैं। राक्षस दौड़कर उनके पास घुटनों के बल बैठ गए। महाराज की आँखों के पपोटों, होंठों और गालों पर नीलापन छाया था। राक्षस ने बुदबुदाकर कहा, "विष !"

एक-एक करके दमन उन्हें आठ कक्षों में ले गया। सम्राट् के आठों पुत्रों के शव उसी प्रकार नीले पड़ गए थे। देखते ही लगता था कि किसी तेज विष के कारण वे छटपटाकर बड़ी पीड़ा उठाने के बाद मरे हैं।

महामात्य की आज्ञा से राजवैद्य आए। उन्होंने परीक्षा करके बताया, "भोजन में भयानक विष मिला होने के कारण ही ऐसा

हुआ होगा, किन्तु…"

राक्षस की ओर देखते ही राजवैद्य को काठ-सा मार गया ; हकलाते हुए बोले, "मैं…मैंने कल भोजन की परीक्षा की थी, उस समय दासी विचक्षणा भी थी । उसी ने तो भोजन परोसा था । उसी पर राजपरिवार को भोजन कराने का भार है ।"

सारा राजभवन खोज डाला गया, पर विचक्षणा कहीं नहीं थी, जैसे धरती में समा गई हो ।

राक्षस ने सिर हिलाकर कहा, "सम्राट् ने अपने हठ के कारण उस नागिन के रूप में अपने निकट अपनी मृत्यु को ही पाल रखा था…"

उनका कण्ठ रुँध गया; दोनों हाथों से मुँह छिपाकर बोले, "पिता के समान धरती का पालन करने वाले सम्राट् चले गए ! दमन, उस दुष्ट कौटिल्य की प्रतिज्ञा पूरी हो गई । जा, प्रजा में घोषणा करा दे कि नारकीय राक्षस अब भी जीवित है ।"

महामात्य हिलक-हिलककर रो पड़े ।

सेनापति के पास ही खड़े उपमहामात्य शकटार की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली । उन्होंने बढ़कर राक्षस को स्नेह से अपनी गोद में भर लिया, किन्तु उन्हें धीरज बँधाने के लिए वह एक शब्द भी नहीं बोल सके ।

लगभग एक सप्ताह और बीत गया ।

पाटलिपुत्र के पश्चिम की ओर गंगा के तट पर बड़ी दूर तक जंगल फैला था । उन्हीं के बीच पगडंडियों के सहारे धीरे-धीरे दो यात्री चले जा रहे थे । प्यास के कारण उनके गले सूख गए थे । शरीर थककर निढाल हो गया था । झाड़-झंखाड़ और कँटीले पौधों के बीच से निकलते समय ही शायद उनकी देह पर इतनी खरोंचें लगी होंगी । शरीर पर जगह-जगह खून की

पपड़ियाँ जम गई थीं । दोनों चुपचाप चलते रहे ।

थोड़ी ही दूर बाद पगडंडी घने कुंजों और झाड़ियों के बाद एक खुली जगह पर पहुँच गई । सामने थोड़ी ही दूर पर गंगा की धारा चमकती दिखाई पड़ रही थी ।

दोनों यात्रियों की आँखों में आशा झिलमिला उठी ।

वह पगडंडी छोड़कर रेत पर तेजी से पानी की ओर बढ़े । हाथ-मुँह धोकर उन्होंने पानी पिया और पास ही वृक्ष की जड़ पर सिर रखकर लेट गए । धीरे-धीरे थकावट के कारण उनकी पलकें नींद के बोझ से झपकने-सी लगीं ।

"आचार्य !"

आवाज सुनते ही युवक उछला और खड्ग हाथ में लेकर खड़ा हो गया ।

"तुम भी हो, चन्द्र ! यहाँ कैसे ?"

चाणक्य भी उठ बैठा । सामने खड़े व्यक्ति की ओर पल-भर देखकर बोला, "आर्य शकटार ? आप कहाँ चले गए थे ?"

शकटार ने पश्चिम की ओर उँगली उठाकर कहा, "वह रही मेरी कुटिया । सारा जीवन राजभवन में बिताकर, खून की नदियों में तैरकर और वैभव में डूबा रहकर मुझे लगता है कि मैं कुछ पा नहीं सका । उसी की खोज में चल पड़ा हूँ । मुझे शान्ति चाहिए !"

चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की ओर देखा, फिर हँसते हुए कहा, "नहीं, चन्द्र, तेरी आँखों में व्यंग्य के भाव मुझे अच्छे नहीं लगते । तू क्या सोचता है कि आर्य शकटार भय के कारण पाटलिपुत्र छोड़कर चले आए हैं ?"

आर्य शकटार हँसे ; बोले, "चन्द्र अभी युवक है, आचार्य, उसे यह सब अच्छा नहीं लगेगा । अभी इसे मेरे मन की पीड़ा का अर्थ समझ में नहीं आएगा । पर भगवान् कौटिल्य, यह क्या

देख रहा हूँ। नन्दों का नाश हो जाने पर भी मुझे लगता है, आपका कोप अभी तक कम नहीं हुआ।"

कौटिल्य ने हँसकर कहा, "अभी कहाँ! आपने शायद सुना नहीं, राक्षस ने राजा का वंश नष्ट हो जाने पर उसके भाई सर्वार्थसिद्धि को सम्राट् बना दिया है और सतर्क होकर मुझसे अपने मृत सम्राट् का बदला लेने की चेष्टा कर रहा है।"

"सर्वार्थसिद्धि राजा बन गया?"

"नहीं, राक्षस ने उसे बना दिया है।" चाणक्य ने व्यंग्य के साथ कहा, "कठपुतला राजा नहीं बनता। बनते हैं योद्धा, जिनमें शासन करने की शक्ति है।"

शकटार हँस पड़े; बोले, "वृषल को मेरा आशीर्वाद है, पर यहाँ क्या सत्कार करूँ? चलते-चलते थक गए हैं, विश्राम करें!"

"नहीं, अभी विश्राम नहीं चाहिए। आप शान्ति की खोज में हैं, मुझे भी शान्ति मिले, यही आशीर्वाद दीजिए। हमें जल्दी-से-जल्दी पंचनद प्रदेश पहुँचना है, नहीं तो वृषल का सारा किया-कराया व्यर्थ हो जाएगा। वाराणसी पहुँचने पर ही रथ की व्यवस्था हो पाएगी।" वह उठ खड़ा हुआ।

चलते-चलते कौटिल्य ने कहा, "मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब एक इच्छा है, देखूँ चन्द्र राजा बनकर कब पूरी करता है!"

शकटार ने सहसा उसे प्रणाम करते हुए कहा, "जिस पर भगवान् कौटिल्य की कृपा हो, वह सब कुछ कर सकता है।"

दोनों यात्री पश्चिम की ओर चल पड़े।

शकटार को लगा, जैसे सूर्य अपना तेज देकर चन्द्र की आभा को बढ़ाने के लिए अपने साथ लिए जा रहा हो।

वह गंगा के किनारे खड़े होकर पानी में उठती धीमी-धीमी लहरों की ओर देखने लगे। ○

१४

तक्षशिला नगर के पूर्वी द्वार पर ही एक बड़ी-सी शाला थी। दूर-दूर से यात्रा करके रात को नगर तक पहुँचने वाले यात्री इसी शाला में विश्राम करते थे। पास ही कुछ छोटी-मोटी दुकानें थीं। उनके जरा और पूरब की ओर हटकर एक छोटा-सा कस्बा बसा हुआ था। राजधानी तक्षशिला से एकदम सटा होने पर भी इसका रूप-रंग कुछ और ही था। छोटे-छोटे कच्चे घर, झोपड़े, सँकरी गलियाँ, साथ ही वहाँ फैली हुई गन्दगी। सभ्य नागरिक उस ओर जाते भी हिचकते थे, पर उनकी सभ्यता की रक्षा करने वाले कितने ही लोग यहीं अपना जीवन बिताते थे।

साँझ बीत चुकी थी।

गहरा अँधेरा छा गया। घरों और छोटी-छोटी दुकानों में दीये टिमटिमाने लगे। अँधेरे में ठोकरें खाते दो बलिष्ठ युवक सँकरी गलियों को पार करके कस्बे के उत्तर वाले छोर पर बने ओदनालय पर पहुँचे। दुकान पर एक युवती भोजन तैयार कर

रही थी । उसने दोनों आदमियों को ठिठकते देख भीतर बैठी बूढ़ी को संकेत किया । उन्हें देखते ही बूढ़ी उठकर बाहर आ गई; बोली, "आओ-आओ ! भीतर आकर आसन पर बैठो, भोजन तैयार ही है । सामिष भी, निरामिष भी; चाहोगे तो शालिधान का भात भी मिलेगा !"

बाहर खड़े युवकों में से एक हँस पड़ा ; बोला, "सुनता है, बल ? तुझे भूख नहीं लगी है क्या ?"

बल ने एक बार बूढ़ी को देखकर मुस्कराते हुए कहा, "भूख तो बहुत लगी है, पर डर भी लगता है । वैशाली के मूल्यवान शालिधान का चावल यहाँ बनेगा ! उसके नाम पर पता नहीं क्या बनाती होगी ।"

बूढ़ी ने कठोर होकर कहा, "आज निर्धन होकर पेट पालने के लिए यह ओदनालय चला रही हूँ । भात रींध-रींधकर यात्रियों को खिलाती हूँ, पर ऐसा मत समझो कि बूढ़ी सुभागा ने कभी भात देखा ही नहीं । जब मेरा बेटा था तो शालि के अलावा उसे किसी भात की गन्ध ही नहीं अच्छी लगती थी ।"

बल ने मुड़कर कहा, "शाला के ब्राह्मण जीव ने भी हमें तुम्हारे यहाँ ही भेजा है, पर तुम्हारे यहाँ शालि का भात खाने कौन आता होगा ?"

"तुम्हारी तरह भूले-भटके यात्री आ ही जाते हैं । अच्छा भोजन खोजते समय आखिर तुम्हें भी तो वहाँ से शाला के जीव ने ही भेजा है न ? आओ, हम दो-तीन व्यक्तियों के लिए रोज शालि का भात बनाते हैं ।"

"चल-चल !" चन्द्रगुप्त उसे भीतर खींच ले गया ; बोला, "विश्वास करना भी सीख !"

भीतर पहुँचकर आसन पर बैठते हुए बल बोला, "परन्तु भगवान् कौटिल्य तो कहते हैं कि राजा को किसी का विश्वास

नहीं करना चाहिए।"

चन्द्रगुप्त ठहाका मारकर हँसा, "हाँ, राजा को नहीं करना चाहिए, पर तू राजा तो नहीं है!"

"न सही, राजा का साथी तो हूँ!" क्षण-भर रुककर बल ने बूढ़ी से जल्दी भोजन लाने के लिए कहा, फिर चन्द्रगुप्त की ओर देखते हुए बोला, "विश्वास मानो, आर्य चन्द्रगुप्त, एक दिन तुम कहीं के राजा बनकर रहोगे।"

"तू सपने देखा करता है।" चन्द्रगुप्त ने मुस्कराकर कहा, "अरे, मैं तो इतना साधारण-सा सैनिक था। पता नहीं कैसे एक अवसर मिल गया। यवनराज सिकन्दर से उस दिन मेरी दो बातें क्या हो गईं, सब मुझे महान् समझने लगे। फिर भी इसका अर्थ यह तो नहीं कि कोई मुझे पकड़कर राजा बना देगा।"

बल चुप बैठा चन्द्रगुप्त की ओर देखता रहा।

बुढ़िया ने झूठ नहीं कहा था। उसने सचमुच इस गन्दी-सी जगह में अच्छे भोजन का प्रबन्ध कर रखा था। दो सुन्दर चमकदार थालों में वह शालि भात और अन्य व्यंजन परोस लाई। देखते ही दोनों की आँखें चमक उठीं। उन्होंने हाथ धोकर खाना शुरू कर दिया।

कुछ देर बाद चन्द्रगुप्त ने कहा, "कितनी भूख लगी थी! सचमुच भोजन बड़ा स्वादिष्ट है!"

बल ने प्रशंसा-भरी साँस छोड़कर कहा, "तृप्त हो गया।"

भोजन समाप्त करके हाथ धोते-धोते बल ने कहा, "आचार्य कौटिल्य तुम पर बहुत प्रसन्न रहते हैं। क्यों चन्द्र! उन्हें तो देखते भय लगता है, तुम उनसे बात कैसे कर लेते हो? डर नहीं लगता?"

"नहीं! तू इसलिए डरता है कि उनके कोमल मन में भरे स्नेह को नहीं देख पाता। ऊपर से उनके क्रोधी चेहरे को ही

देखकर रह जाता है।" चन्द्रगुप्त ने भी हाथ धो लिए।

बल ने दीवार से पीठ लगाकर बैठते हुए कहा, "थोड़ा-सा विश्राम कर लें।...चन्द्र, बैठो न !"

चन्द्रगुप्त ने बैठते-बैठते कहा, "आचार्य कहते हैं, हमें विश्राम चुप बैठने से नहीं मिलता, काम पूरा होने के सुख से मिलता है।"

बल चुपचाप आँखें मूँदे पड़ा रहा। कुछ देर बाद बोला, "एक बात बताओगे, चन्द्र? तुमने सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने के लिए क्यों ललकारा था ? विश्वास न हो तो..."

"राजा को किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए।" चन्द्रगुप्त ठहाका मारकर हँस पड़ा।

बल ने रूठते हुए कहा, "बड़ा राजा बना है ! जा मत बता, मेरा क्या है ?"

"तू तो हँसी में रूठ जाता है। तुझे क्या विश्वास नहीं आता कि मैं सचमुच सिकन्दर को पराजित देखना चाहता था ? मगध के सम्राट् उग्रसेन नन्द की विशाल सेना तैयार खड़ी थी। रास्ते में लड़ता-कटता सिकन्दर यदि किसी प्रकार वहाँ तक पहुँच भी पाता तो कभी जीवित नहीं लौट सकता था।"

"तुझे यवनराज की भारी सेना के सामने उसे ललकारते डर नहीं लगा था ? कहीं पकड़ा जाता, तो ?" बल जैसे मित्रता की गहराई बढ़ाने के लिए 'तुम' की जगह बार-बार 'तू' कहने लग गया।

"तो क्या ! आज सारा भात और ये व्यंजन उड़ाने के लिए तू अकेला ही रह जाता !"

दोनों ही हँस पड़े।

बुढ़िया को धन देकर बल ने कहा, "कहीं से पान मँगा दे, मिलता तो होगा। खाकर हम दोनों चले जाएँगे।"

"जाने की जल्दी क्या है ?" बुढ़िया ने कहा, "मन हो तो आज यहीं सो रहो। रात बीत ही जाएगी।"

वह बाहर चली गई।

बल ने एकाएक पूछा, "अच्छा, एक बात बता, आर्य कौटिल्य लौटकर अब तक्षशिला विश्वविद्यालय में क्यों नहीं जाते? विश्वास है न ?"

"हर बात में विश्वास-विश्वास···" चन्द्रगुप्त ने चिढ़कर कहा, "अब आचार्य वहाँ जा ही कैसे सकते हैं ? मगध···"

"राजा को चाहिए, कभी किसी का विश्वास न करे !" सहसा एक स्त्री का स्वर गूँज उठा।

दोनों उछलकर बैठ गए। बल ने तो कमर में बँधी कटार भी बाहर खींच ली। चन्द्रगुप्त ने देखा—भोजन बनाने वाली युवती पास ही खड़ी हँस रही है। चन्द्रगुप्त को भी हँसी आ गई; बोला, "देख तो सही ! तू कैसी बातें करता है, बल, ये सब भी मुझे राजा समझने लगे। अरे, तू इतना डर क्यों गया है ? स्त्री का स्वर सुनकर तेरा यह हाल है ? लेटता क्यों नहीं ?"

किन्तु बल लेटा नहीं। कुछ देर तक स्त्री की ओर घूरता रहा, फिर बोला, "तू कौन है ?"

युवती हँसकर बोली, "तू मुझे नहीं जान सकता। तेरा राजा जान सकता है।" उसने दाएँ हाथ की सबसे छोटी अँगुली सीधी करके चन्द्रगुप्त के सामने फैला दी। चन्द्रगुप्त सहसा गम्भीर हो गया ; बोला, "मेरे लिए यहाँ कोई संवाद है ?"

"हाँ !" युवती हँस पड़ी, "आचार्य कौटिल्य ने कहा है कि राजा को किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए !"

चन्द्रगुप्त चिन्ता में मग्न-सा कुछ देर रीती आँखों से छप्पर की ओर देखता रहा, फिर सहसा झपटकर बल की कटार छीनते हुए बोला, "तू कौन है ? अपना ठीक परिचय दे, बल !"

देखते-ही-देखते बल का चेहरा काला पड़ गया ; बोला, "यह कैसा अत्याचार है, चन्द्रगुप्त ! आज तीन माह से तुम्हारे साथ-साथ भटक रहा हूँ, फिर भी कहते हो, परिचय दे। सौ बार तो बता चुका हूँ कि गान्धार का ही रहने वाला हूँ। सिकन्दर की सेना में था। वह लौट गया, तब से भटक रहा हूँ ··फिर तुम मिल गए।"

चन्द्र ने उसकी छाती पर से कटार हटाई नहीं; बोला, "तू अपना ठीक परिचय दे, बल ! तू जानता है, राजा कभी किसी का विश्वास नहीं करता। और जिस पर सन्देह करता है, उसका प्राण ले लेता है।" उसने कटार की नोक बल की छाती पर चुभा-सी दी।

बल अब हँस नहीं पाया; काँपते हुए बोला, "मुझे प्राणदान दो, आर्य ! मैं गुप्तचर हूँ। मगध-सम्राट् महापद्म नन्द की हत्या होने के बाद ही हमें तुरन्त आप दोनों का पीछा करने की आज्ञा दी गई थी। काशी से ही आर्य राक्षस की आज्ञा से आप दोनों के पीछे-पीछे लगा हूँ। जब आप और आचार्य कौटिल्य बचकर मगध से निकल आए तो···"

"इसका उपाय करना होगा !" चन्द्रगुप्त ने युवती की ओर देखा।

"उपाय हो चुका है, आर्य ! इसके भोजन में मैंने पहले ही अचेत करने की औषधि डाल दी है। इसी कारण यह थककर विश्राम करने के लिए यहाँ पड़ा रह गया।"

"तेरा नाम क्या है ?"

"विजया।" स्त्री ने सिर झुकाकर कहा, "मुझे कई मास पहले आचार्य कौटिल्य ने यहाँ रहने के लिए भेजा था। आज जैसे उसका लाभ मिल गया।"

"पर तू बल को कैसे पहचान गई ?"

"मैं नहीं, शाला का ब्राह्मण जीव इसे पहचानता है। वह भी आपका ही सेवक है। आचार्य की कृपा से वह भी यहीं रहता है। शाला में कभी-कभी बड़े-बड़े राजकुमार, सेनापति, गुप्तचर या महत्वपूर्ण व्यक्ति आ-आकर रुकते हैं। हम उनका भेद लेकर आचार्य को पहुँचाते हैं।"

चन्द्रगुप्त कुछ और पूछना चाहता था, पर विजया ने टोक दिया ; बोली, "क्षमा करें, आर्य ! इससे ही पूरा परिचय मिल गया होगा। अब यह सो गया है, मैं इसका प्रबन्ध करती हूँ। तब तक सावधान रहें, कहीं यह छल न करे !"

विजया बाहर चली गई। लौटी तो उसके साथ दो व्यक्ति और थे। उन्होंने अचेत पड़े बल को बाँध लिया और उसे उठाकर बाहर चले गए।

उस रात चन्द्रगुप्त वहीं सोया रहा। बल का रूप देखकर वह चौकन्ना हो गया। आचार्य कौटिल्य को उसने बीसों बार अपने गुप्तचरों को अजीब-अजीब आदेश देते देखा था। कई बार वह सोचता, कहीं कौटिल्य को गुप्तचरों का खेल खेलते रहने का मानसिक रोग तो नहीं है। यह भी कोई बात हुई कि पत्र देकर किसी को उज्जयिनी के किसी सेठ के यहाँ दास बनाकर भेज दिया और किसी को सँपेरा बनकर पाटलिपुत्र में खेल दिखाने का काम सौंप दिया।

उस दिन अभिसार राज्य में एक फेरीवाला मिल गया। उसे चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के सामने ही फेरी लगाने का काम सौंपा था। उसका रंग-ढंग देखकर कौन सोच सकता था कि वह गुप्तचर है ! चन्द्रगुप्त ने उससे एक कटोरी का मोल-भाव भी किया था। उसने बीसों प्रकार के बर्तन दिखाए। पता नहीं, वह पहचान भी पाया या नहीं, चन्द्रगुप्त उसे पहचान गया था।

आज बल का भेद खुलने पर चन्द्रगुप्त को लगा, मानो उसके

आसपास का हर व्यक्ति गुप्तचर है। कोई उसका शत्रु है, कोई रक्षक। आचार्य सच ही कहते हैं, राजा की आँख स्वयं राजा पर भी लगी रहती है। इतिहास में पहली बार गुप्तचरों का ऐसा जाल बिछा लग रहा है। पहले की अर्थनीतियों में भी तरह-तरह के गुप्तचरों के भेद बताए गए हैं, पर आचार्य तो कुछ और ही ढंग से गुप्तचरों का संचालन कर रहे हैं। उनकी आँख कहाँ नहीं है !

१५

दूसरे रोज उसे बूढ़ी ने तिल, चावल, मधु, शक्कर आदि मिलाकर बना तिलोदक देते हुए कहा, "विजया कहती है कि अतिथि को यों ही नहीं भेजना चाहिए। नहीं-नहीं, इसके लिए धन नहीं चाहिए। अतिथि से कोई मूल्य लेता है !"

विजया इस समय भी भोजन बना रही थी। चन्द्रगुप्त ने उसके पास खड़े होकर बूढ़ी सुभागा से कहा, "मैं तुम्हारी इस दासी पर प्रसन्न हूँ। अवसर मिला तो इसे जरूर याद करूँगा।"

उसकी ओर देखकर विजया धीरे से हँसी, फिर उसने सिर झुका लिया। चन्द्रगुप्त समझ गया कि बूढ़ी के कारण ही वह प्रणाम नहीं कर सकती। वह भी हँसता हुआ बाहर चला गया। उसे पहली बार लगा कि उसके कारण आज सारे भरत-खण्ड में पता नहीं कितने लोग व्यस्त हैं। अपनी ओर देखकर वह हँसा। एक साधारण-से युवक को लेकर आचार्य कौटिल्य कितना भयानक सपना देख रहे हैं !

किन्तु आचार्य कौटिल्य पर अविश्वास कैसे किया जाए।

मगध के सम्राट् नन्द के प्रताप तथा उनके अपार धन और शक्ति की धाक धरती के कोने-कोने तक फैल चुकी थी। उनकी असंख्य सेना के भय से विश्वविजय का सपना देखनेवाले यवन-राज सिकन्दर को भी पीछे लौटना पड़ गया था। उसी सम्राट् के राजभवन में शिखा खोलकर चाणक्य ने नन्द-वंश का विनाश करने की प्रतिज्ञा की। कौन सोचता था कि कौटिल्य-सा साधारण ब्राह्मण महाप्रतापी नन्द के राजभवन की दीवारें छेदकर और महामात्य राक्षस की पैनी आँखों में धूल झोंककर नौ नन्दों को एक साथ ही विषैला भोजन खिलवा देगा! ऐसे व्यक्ति के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। संसार में कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे आचार्य कौटिल्य न कर सकें।

चन्द्रगुप्त का सिर गौरव से ऊँचा हो गया। उसे अपनी शक्ति पर कम विश्वास नहीं है। इस विशाल भरत-खण्ड में कौटिल्य ने उसे ही राजा बनाने के लिए चुना है, तब चन्द्रगुप्त वैसा ही कर भी दिखाएगा। वह सिद्ध कर देगा कि सचमुच अकेला वही राजा बनने योग्य था।

नगर का द्वार खुले बड़ी देर हो चुकी थी। शाला के सामने चन्द्रगुप्त कुछ देर खड़ा रहा। पास ही ब्राह्मण जीव बैठा किसी यात्री से बातें कर रहा था। उसने चन्द्रगुप्त की ओर देखा भी, फिर आँखें फेरकर दूसरी ओर देखने लगा। मन-ही-मन चन्द्रगुप्त हँसा। यह व्यक्ति जैसे उसे जानता ही नहीं। वह धीरे-धीरे द्वार की ओर बढ़ चला।

एक बार उसका हृदय धड़क उठा। अब उसे बहुत ही सतर्क रहना पड़ेगा। इस बीच बल की चालाकी से पता नहीं कहाँ कैसा जाल बिछ गया हो। पर जिस काम से वह आया है, उसे तो करना ही पड़ेगा। आचार्य कौटिल्य ने कहा था, 'दुस्साहस मत करना। वैसे आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें हर जगह सहायता

मिलेगी ।'

और सहायता न भी मिले तो क्या हो जाएगा ? चन्द्रगुप्त अपने बल से भी बहुत कुछ कर सकता है । तक्षशिला में केवल तीन दिन रहकर उसे किसी प्रकार अपने मित्रों को और भी घनिष्ठ बनाना है । पश्चिमी सीमा के पहाड़ी नरेश पर्वतक वैसे तो तैयार ही बैठे हैं । इस समय आसपास के सभी राज्यों पर उनकी शक्ति का आतंक जमा है । अभी सिकन्दर के आक्रमण के कारण वह कुछ चिन्तित हैं । इसी कारण देर हो रही है । उन्हें किसी भी तरह तैयार करना ही है ।

आचार्य चाणक्य ने ठीक ही सोचा है । पहले इस पूरे प्रदेश पर छाए हुए यवनों से छुटकारा पाया जाए । अवसर भी कितना अच्छा मिला है ! इस समय यदि अचानक पाटलिपुत्र पर आक्रमण करके युद्ध छेड़ा जाए, तो यहाँ सेनाओं के साथ बैठे यवन सेनापतियों को भी इस गड़बड़ी से लाभ उठाने का लोभ हो सकता है । वे बीच में ही आक्रमण कर बैठें, तो ? और कहीं यवनराज सिकन्दर ही यह अवसर देखकर लौट पड़ा तो सर्वनाश ही हो जाएगा । उस समय मगध की सेना और हमारी सेना—दोनों ही कमजोर पड़ी होंगी । सिकन्दर देखते-ही-देखते विनाश ढा देगा । इसलिए पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए उचित अवसर और समय देखना होगा । प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।

हाँ, इस बीच अपनी शक्ति बढ़ाई जाए । महाराज पर्वतक को कौटिल्य ने मगध का आधा राज्य देने का वचन दिया है, फिर भी हमारा साथ देने के पहले वह हमारी शक्ति का अनुमान लगाना ही चाहेंगे और वैसे भी यदि शक्ति न रही, तो मगध पर विजय पाने के बाद वह भी हमारे शत्रु बन सकते हैं । उनके मन में भी तो लालच जग सकता है !

पहले पंचनद प्रदेश में अपनी शक्ति बढ़ानी होगी । यवनों

को खदेड़ने के साथ अपने-आप शक्ति बढ़ती जाएगी। फिर भी खूब समझ-बूझकर चलना होगा। चन्द्रगुप्त इस महायज्ञ का यजमान है। उसे ही सबसे बड़ी भूमिका निभानी है। शत्रु और मित्र उसी के होंगे, आचार्य कौटिल्य के नहीं। कुछ भी हो, सारा भार तो चन्द्रगुप्त को अपने कन्धों पर ही सँभालना है।

नगर के द्वार पर सैनिकों को कब अपना परिचय देकर सोचता-सोचता चन्द्रगुप्त इतनी दूर चला आया, इसका पता ही न चला। उसने अपने-आपको विश्वविद्यालय का छात्र कहकर ही अपना परिचय दिया था। अभी वर्ष-भर भी नहीं बीता, वह यहाँ रह ही चुका है, इसलिए किसी को सन्देह भी तो नहीं हो सकता। हाँ, स्वयं चन्द्रगुप्त के अपने ही मन में शंका अवश्य रहती है।

वह पल-भर ठिठककर सोचता रहा। पहले कहाँ चला जाए ? फिर याद आया, कहीं कोई गुप्तचर साथ न लगा हो। किसी का कोई ठिकाना नहीं। पहले विश्वविद्यालय ही जाकर तब कुछ और करना उचित होगा।

वहाँ के एक-एक मार्ग से चन्द्रगुप्त अच्छी तरह परिचित था। विश्वविद्यालय पहुँचकर उसने कई आचार्यों के यहाँ का चक्कर लगाया, कुछ सहपाठियों से भी भेंट हुई। उनके साथ बैठकर वह अर्थशास्त्र के सूत्रों पर बातें करता रहा। कितने ही नीतिज्ञों की चर्चा हुई; कौटिल्य की कम-से-कम बात उठी।

साँझ को अवसर देखकर वह चुपचाप बाहर निकल पड़ा। इधर-उधर देखता हुआ बड़ी सावधानी से वह सामन्त देवदत्त के यहाँ पहुँचा। आचार्य के तक्षशिला रहते समय भी वह कितनी ही बार सामन्त देवदत्त के यहाँ आता रहा है, इसलिए यहाँ तक तो किसी को सन्देह नहीं होगा, पर वहाँ जो कुछ होगा, उसके लिए बहुत सतर्क रहना है।

वहाँ सचमुच पहले से ही सब ठीक था। सामन्त ने उसे देखते ही छाती से लगा लिया ; बोले, "बस, तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी। और सब ठीक है। महाराज पर्वतक के ज्येष्ठ पुत्र युवराज मलयकेतु सम्भवत: यात्रा करने के लिए यहाँ आए हैं। अपने आचार्यों का दर्शन करके वह शीघ्र ही अपनी राजधानी को लौट रहे हैं। उनसे अच्छा माध्यम क्या होगा !"

"तक्षशिला में वह अध्ययन कर चुके हैं ?"

"तीन वर्ष पहले तक यहीं युद्ध-कौशल का अध्ययन करके वह सैन्य संचालन में पारंगत हुए हैं।"

चन्द्रगुप्त प्रसन्न हो गया ; बोला, "कब मिलेंगे ?"

साथ ही रथों की घरघराहट सुनाई पड़ी। कुछ आगे बढ़कर सामन्त देवदत्त ने नीचे झाँककर देखा, फिर मुड़े ; बोले, "बस, आ ही गए। तुमसे उनको मिलाकर मैं किसी बहाने चला जाऊँगा। उतनी देर में तुम बातें कर लेना।"

"किन्तु यहाँ किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं होगी ?"

सामन्त हँसे, "नहीं ! भगवान् कौटिल्य की आज्ञा से मैंने पहले ही युक्ति कर दी है। बाहर का प्रहरी कुछ सुन नहीं सकता और भीतर तुम दोनों की सेवा में जो परिचारिका रहेगी, वह गूँगी, बहरी दोनों ही है। पर उसे संकेत तुम्हीं करना, कोई आज्ञा देनी हो तो तुम्हीं सँभालना। युवराज को पता न चले तो अच्छा ही है। कहीं उसे अपमान समझकर वह मुझ पर रुष्ट न हो जाएँ !"

द्वारपालों ने जयजयकार किया। सामन्त बोले, "लो, वह आ गए। मैं जाता हूँ, तुम यहीं बैठो ! मगध के भावी सम्राट् को किसी छोटे-से युवराज का स्वागत करने के लिए जाना शोभा नहीं देता !"

"आपकी कृपा···"

सामन्त मुस्कराते हुए चले गए।

लौटते समय उनके साथ केवल युवराज मलयकेतु थे। चन्द्रगुप्त अब तक बैठा नहीं था, उन्हें देखकर भी खड़ा ही रहा। युवराज के प्रवेश करते ही सामन्त ने परिचय कराया, "महावली महाराज पर्वतक के पुत्र प्रतापी युवराज मलयकेतु का स्वागत करें, आर्य !"

अभी वह बात पूरी भी न कर पाए थे कि द्वारपाल ने प्रवेश करके कहा, "स्वामी को तुरन्त ही महाराज ने स्मरण किया है।"

"महाराज ?" सामन्त हिचके।

युवराज ने कहा, "आप जाइए, आर्य ! महाराज आम्भि की आज्ञा तो माननी ही होगी।"

"क्षमा करेंगे, मुझे थोड़ी देर तक तक यहाँ उपस्थित न रहने का दुर्भाग्य भुगतना ही पड़ेगा।" सामन्त तुरन्त बाहर चले गए।

थोड़ी ही देर बाद परिचारिका जलपान के लिए सुगन्धित पदार्थ लाने लगी। देखते-ही-देखते उनके सामने कितने ही सुन्दर थालों में तरह-तरह की वस्तुएँ सज गईं। चन्द्रगुप्त युवराज से कहने की सोच ही रहा था कि युवराज बोल पड़े, "ग्रहण करें, आर्य चन्द्रगुप्त !"

चन्द्रगुप्त ने स्वीकार किया और पुए का एक टुकड़ा उठाकर खाने लगा।

युवराज ने उसका साथ देते हुए एकाएक कहा, "आपका कार्यक्रम सुन चुका हूँ, देव ! हमारे योग्य सेवा बताइए !"

चन्द्रगुप्त ने ध्यान से एक बार परिचारिका की ओर देखा, फिर युवराज की ओर। उसकी सारी देह में सिहरन-सी दौड़ गई। वैसे तो पता नहीं कितनी बार दास-दासियाँ और कितने

गुप्तचर उसे देव कहते रहे हैं, पर किसी राज्य के युवराज के मुँह से अपने लिए यह सम्बोधन वह इतनी आसानी से सह नहीं पाया। उसे लगा, किसी जादू के बल से वह सहसा ही बहुत ऊँचे आसन पर बैठ गया है। अब उसे सँभलकर उस आसन के अनुकूल ही व्यवहार करना पड़ेगा, नहीं तो सब इसे नाटक समझेंगे। उसने अपने को सँभालकर गम्भीर स्वर में पूछा, "संवाद मिल चुका है ?"

"हाँ !" युवराज ने आदर से सिर हिलाया ; फिर बोले, "आज ही पिताश्री के भेजे हुए चर ने बताया कि यहाँ मुझे आपके दर्शन का भी सौभाग्य मिलेगा। सामन्त की ओर से निमन्त्रण पाते ही मैं समझ गया।"

"क्यों ? सामन्त के साथ क्या मेरे सम्पर्क की बात यहाँ सभी जानते हैं ?" चन्द्र की भौंहें टेढ़ी पड़ गईं।

"नहीं-नहीं," युवराज ने बात सँभाली, "मुझसे कहने में त्रुटि हो गई। महाराज के दूत ने ही बताया था कि सामन्त इसमें सहायक होंगे।"

"ओऽऽह !" चन्द्रगुप्त ने सुगन्धित जल पीते हुए कहा, "युवराज, बड़ी इच्छा है कि एक बार तुम्हारे प्रदेश की यात्रा करूँ !"

युवराज ने कहा, "कार्य सिद्ध होने पर आप हमारे अतिथि बनकर तो आएँगे ही।"

चन्द्रगुप्त उसकी चतुरता समझ गया। राजा पर्वतक तो अपने को उसके बराबर का ही शासक समझेंगे, तभी तो यह मगध-सम्राट् को अतिथि बना रहा है। वह मन-ही-मन हँसा। भगवान् कौटिल्य के मन में पता नहीं क्या है! कौन जाने, किसी दिन खड्ग लेकर पर्वतक का राज्य जीतने के लिए भी तो वहाँ जाना पड़ सकता है। ऊपर से मुस्कराकर बोला, "मैं उस दिन

की प्रतीक्षा करूँगा।"

"हम भी करेंगे, देव !" युवराज ने जैसे सब कुछ चन्द्रगुप्त पर ही डाल दिया ; बोला, "मैं पूजनीय महाराज से क्या कहूँगा ?"

हाथ बढ़ाकर चन्द्र ने विजेता की भाँति कहा, "हम अपना हर वचन पूरा करना जानते हैं ! महाराज पर्वतक मेरा यही वचन चाहते हैं न ?"

युवराज ने कहा, "केवल यही। और अब उनकी आज्ञा से मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि जहाँ, जिस समय भी हमारी आवश्यकता होगी, वहाँ आप हमें दृष्टि उठाते ही पाएँगे।"

"महाराज को आचार्य कौटिल्य के आशीर्वाद कहें !"

चन्द्र उठ खड़ा हुआ।

युवराज ने भी तुरन्त ही खड़े होकर आदर सहित कहा, "आर्य देवदत्त की प्रतीक्षा नहीं करेंगे ?"

किसी प्रतापी राजा की तरह धीमी रहस्यभरी मुस्कान के साथ चन्द्र ने कहा, "हम पर सामन्त अप्रसन्न नहीं होंगे।"

युवराज ने झुककर कहा, "देव से अप्रसन्न होने का साहस तो शत्रुओं को भी नहीं है !"

चन्द्र मुस्कराकर बाहर निकल पड़ा। इस समय यही उचित था। सामन्त ने शायद सोचा हो कि सन्धि में देर लगेगी, पर यहाँ तो पहले से ही सब कुछ निश्चित था। इसके बाद बैठकर युवराज से और बातें नहीं की जा सकतीं। मगध का भावी सम्राट् अपना मूल्य जानता है।

पर अब ? अभी जाए कहाँ ? सिन्धु के राजदूत से मिलने का उपाय उसे स्वयं ही रचना पड़ेगा। पहले तो आशा थी कि राजकुमार भागुरायण तथा मालवों की ही भाँति वहाँ का उत्तर भी दूत से ही मिल जाएगा, पर बाद में पता चला कि सिन्धु के

राजपुत्र भी स्वयं चन्द्रगुप्त से आश्वासन चाहते हैं। उनके राजदूत से तक्षशिला में बात की जा सकती है। पर कब, कैसे, यह स्वयं चन्द्र को सोचना है। किसी को जरा भी सन्देह नहीं होना चाहिए। इसके लिए खूब सोच-विचारकर चलना पड़ेगा। आज तो मिलना कठिन है। कल भी वह पता नहीं कब तक राजा आम्भि की सभा में रहें। कल साँझ को भवन में लौटने पर जरूर कोशिश की जा सकती है। पर कैसे ?

एकाएक चन्द्रगुप्त हँस पड़ा। कैसा विचित्र संयोग है! मगध का भावी सम्राट् छोटे-छोटे देशों के राजदूतों से मिलने के लिए यहाँ-वहाँ भटकता फिर रहा है। भूख लगने पर उसे कभी-कभी सत्तू खाकर ही काम चलाना पड़ता है। पहचाने जाने के डर से वह निर्भय होकर घूम भी तो नहीं सकता!

वह बीच से ही नगर के बाहर की ओर मुड़ चला। क्यों न आज की रात चलकर बाहर वाली शाला में ही काटी जाए! शायद कोई उपाय निकल ही आए। विजया के बनाए शालि-भात की गन्ध जैसे उसे बरबस खींचने लगी।

१६

कठिनाई से एक माह और बीता होगा। सारा पंचनद प्रदेश पता नहीं क्यों, विद्रोह की आग से धधक उठा। छोटे-छोटे स्थानों पर भी विद्रोह होने लगे। यवन सैनिकों के लिए तो मृत्यु का आतंक बहुत ही गहरा हो गया। यवन सेनापतियों के नीचे काम करने वाले पारसी, मिस्री, गान्धारी तथा अन्य भारतीय सैनिक भी घबरा उठे। कोई कहीं भी ठीक से सँभाल नहीं पा रहा था। सिकन्दर यहाँ का एक बहुत बड़ा भाग अपने एक सेनापति फिलिप को क्षत्रप बनाकर सौंप गया था।

जाते समय यवनराज ने अपने जीते हुए प्रदेशों का बहुत बड़ा भाग पुरु और आम्भि के राज्यों में मिला दिया था। उनके साथ हुई सन्धि के अनुसार सिकन्दर को पूरा विश्वास था कि कभी यवन शासक को कष्ट हुआ तो वे दोनों साथ देंगे ही।

इन विद्रोहों की सूचना उसे मिली। यह भी पता चला कि विद्रोह की आग भड़काने में चन्द्रगुप्त मौर्य का ही सबसे बड़ा हाथ है। पर सिकन्दर विवश था। वह इतनी दूर चला गया था

कि लौटना असम्भव-सा था, फिर सेना उसका एक-एक पग पर विरोध कर रही थी। स्वयं सिकन्दर मालवों से लड़ते समय गरदन पर किसी मालवी योद्धा की गदा से चोट खाकर दुर्ग की दीवार से नीचे गिर पड़ा था और अब तक बीमार था।

इधर पंचनद में आँधी-तूफान की तेजी से उठी विद्रोह की आग यों ही नहीं रुकी। और एक दिन सिकन्दर यह सुनकर स्तब्ध रह गया कि विद्रोहियों ने उसके क्षत्रप फिलिप को मार डाला।

फिर भी सिकन्दर लौट नहीं सका। उसने पुरु और आम्भि को संवाद भेजा कि यवन सेनापति युदेमो के साथ मिलकर इन विद्रोहों का दमन करें।

किन्तु पंचनद में उठी आग की उन लपटों की भयंकरता शायद पुरु तुरन्त ही समझ गया। वह विदेशी यवनों की तरह अपनी ही धरती के योद्धाओं को काटकर नहीं फेंक सकता था।

तक्षशिला का राजा आम्भि यवनराज सिकन्दर तथा यवनों से वैसे भी प्रसन्न नहीं था, क्योंकि उसका सबसे बड़ा शत्रु पुरु अब भी जीवित था और भीषण युद्ध में टकराकर भी उसने सिकन्दर से राजाओं जैसा सम्मान पाया था। दूसरी ओर मित्र होते हुए भी आम्भि को सिकन्दर अपने अधीन एक छोटा-सा शासक ही समझता था। भरत-खण्ड के उत्तर पश्चिमी विशाल प्रदेश का सम्राट् बनने का सपना आम्भि के मन में ही रह गया था। सिकन्दर को भेंट देकर पहले ही उससे सन्धि कर लेने के कारण तक्षशिला की प्रतिष्ठा को भी चोट पहुँची थी। उससे अच्छा तो तटस्थ राज्य अभिसार समझा जाता था।

फिर पंचनद की लपटों से लड़ने का साहस आम्भि नहीं बटोर सका। उस विद्रोही दल का सामना, जिसका नेता चन्द्रगुप्त स्वयं था ! वही चन्द्रगुप्त, जिसने यवनों की विशाल सेना के सामने खड़े होकर भी सिकन्दर का अपमान कर दिया

था। वही चन्द्रगुप्त, जिसने देश-विदेश के भयंकर योद्धाओं से घिरे रहने पर भी फिलिप का वध करवा ही दिया। मनुष्यों से तो युद्ध किया भी जा सकता है ··

यवन सेनापति युदेमो चाहकर भी कुछ नहीं कर पाया। फिलिप के हाथों में सौंपा गया प्रदेश वह विद्रोहियों से छीनकर फिर यवनों के हाथ में नहीं कर सका। वहाँ कितने ही हिस्से बँट गए। चन्द्रगुप्त के कारण वहाँ प्रबन्ध की भी कोई कठिनाई नहीं उठी। युदेमो अपनी सीमा में ही जकड़कर दिन काटने लगा।

धीरे-धीरे सारा पंचनद इन हलचलों से काँप उठा।

कब क्या हुआ, कोई नहीं समझ सका। पर एक दिन पाटलिपुत्र में बैठे महामात्य राक्षस दमन से एक संवाद पाकर चकित रह गए। सीमाप्रान्त के शक्तिशाली राजा पर्वतक के साथ-साथ सिन्धु, कश्मीर, मलय आदि पाँच राजाओं की सेनाएँ एक हो गई हैं। शेष पंचनद प्रदेश से चुने गए योद्धाओं की एक सेना चन्द्रगुप्त की अपनी है; वही योद्धा, जिन्होंने यवनों को भी काटकर फेंक दिया था। इस विशालवाहिनी को लेकर चन्द्रगुप्त तेजी से मगध की ओर बढ़ रहा है।

महामात्य बड़ी देर तक अवाक् बैठे रहे। उन्हें यह आभास तो मिल चुका था कि चाणक्य की सहायता से उसका शिष्य मौर्य किसी दिन मगध पर आक्रमण करने का सपना देख रहा है। पर उन्हें कल्पना भी न थी कि स्वयं पर्वतक जैसे शक्तिशाली राजा तथा अनेक दूसरे राजा, राजपुत्र और सामन्त भी चन्द्रगुप्त के साथ मगध पर टूट पड़ेंगे। अकेले चन्द्रगुप्त होता तो मगध की विशाल सेना उसे कहीं भी रौंदकर रख देती। उसके कण भी ढूँढ़े न मिलते।

धीरे-धीरे और भेद खुले। चाणक्य ने बड़ी चतुरता से काम

लिया है। महाराज पर्वतक को उसने मगध का आधा राज्य देने के लोभ में अपने साथ मिलाया है। पर्वतक का पुत्र मलयकेतु स्वयं भी योग्य सेनापति है। चन्द्रगुप्त से उसकी गहरी मित्रता हो गई है। चन्द्रगुप्त के साथ वह भी सेना का संचालन कर रहा है।

उसी प्रकार चाणक्य ने पता नहीं किस-किस को कितने ही सपने दिखाकर मिला लिया था। युद्ध में कौन जाने क्या हो, कौन बचे, कौन नहीं, वचन पूरे करने की बात तो बाद में है।

मगध गुप्तचरों के दल-के-दल छोड़ दिए गए। पर उनसे जो भी सूचना मिली, उससे महामात्य राक्षस को पीड़ा ही पहुँची। आक्रमण करने वाली सेना को इतना संगठित रूप दिया गया था कि उसके शिविरों में किसी अपरिचित का धँस पाना असम्भव-सा है। फिर यवनों के विरुद्ध सफलता मिल जाने के कारण एक-एक सैनिक के मन में चन्द्रगुप्त का स्थान देवता के समान है। कोई उसकी प्रशंसा के सिवा और कुछ भी नहीं सुनना चाहता।

महामात्य राक्षस चिन्ता में पड़ गए। आज सम्राट् महापद्म नन्द होते तो इतनी चिन्ता की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर उन्हीं के पद पर बैठकर भी उन्हीं के भाई सम्राट् सर्वार्थसिद्धि क्या कभी उनका अभाव पूरा कर सकते हैं? फिर भी भरे मन से महामात्य राक्षस ने सम्राट् सर्वार्थसिद्धि के पास जाकर संकट की सूचना दी। सुनते ही सम्राट् बौखला गए; जल्दी-से बोले, "तुम इसी समय मगध की सेना भेजकर शत्रु को पंचनद प्रान्त में ही कहीं रोक दो, महामात्य!"

राक्षस को अपना दुख सँभालने के लिए रुकना पड़ा, उन्होंने समझाया, "ऐसा कैसे हो सकता है, महाप्रभो, इतने बड़े आक्रमण का सामना करने के लिए वैसी ही तैयारी भी तो करनी होगी।"

"तो तैयारी करो ! मैं क्या करूँ ?" मगध के महाप्रभु भोजन कर रहे थे। ऐसे समय महामात्य का आकर युद्ध की बातें करना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने पास ही बैठी सबसे छोटी महारानी की ओर देखकर हँसते हुए पूछा, "तुम्हारे प्रदेश में, सुनता हूँ, मोर बहुत होते हैं। कभी मैं वहाँ चलूँगा।"

महारानी कनखी से देखकर मुस्कराईं; बोलीं, "महाराज क्यों कष्ट करेंगे। इच्छा होते ही वहाँ से झुण्ड-के-झुण्ड मोर ही चलकर पाटलिपुत्र आ जाएँगे।"

सब रानियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं, साथ ही मुँहलगी दासियाँ भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गईं। सम्राट् स्वयं भी झूम-झूमकर हँस रहे थे।

आर्य राक्षस की शिराएँ तन गईं। इस सम्राट् की जगह एक दिन उन्होंने एक और सम्राट् को बैठे देखा था, जिसकी हँसी में कोई हँसी मिलाने का साहस नहीं कर सकता था। अकेले उसी की हँसी से राजभवन गूँज उठता। उसकी भौंहें हिलते ही सब कुछ डगमगा जाता···और आज उसी आसन पर बैठकर एक और सम्राट् हँसता है, पर उसकी हँसी दासियों की हँसी में छिपकर रह जाती है ! उसके राज्य पर इतनी बड़ी वाहिनी लेकर उसका सबसे भयानक शत्रु, महापराक्रमी नन्द सम्राट् का विनाश करनेवाला शत्रु, चढ़ा आ रहा है, और वह है कि मोर देखने के लिए पर्वतीय प्रदेश की किसी घाटी में जाकर छिपना चाहता है!

आर्य राक्षस की इच्छा हुई कि उठकर चले जाएँ, पर कोई-न-कोई उपाय तो करना ही पड़ेगा। जिस स्वामी की याद में व्याकुल होकर राक्षस ने अपनी अन्तिम साँस तक उसके राज्य और कुललक्ष्मी की रक्षा की प्रतिज्ञा की है, उसी के कारण यह सब भी चुपचाप सहना ही पड़ेगा।

अवकाश पाते ही राक्षस ने फिर कहा, "देव, उस सेना के

साथ स्वयं चन्द्रगुप्त, महाराज पर्वतक और युवराज मलयकेतु भी हैं। मगध की सेना के लिए भी ऐसा ही कोई सेनापति चाहिए।"

"सेनापति चाहिए ?" सम्राट् चौंक पड़े, "क्यों ? हमारी सेना के सेनापति को किसने निकाल दिया ? तुमने ?"

"क्षमा हो, देव, मैं तो कह रहा था कि···"

"अच्छा, ठीक ही किया होगा तुमने। तुमसे बढ़कर स्वामि-भक्त कोई नहीं है। बड़े भ्राता सदा यही कहते थे। ठीक ही किया। अब तुम्हीं जिसे चाहो, सेनापति बना दो !"

राक्षस ने खड़े होकर कुछ कठोरता से कहा, "सेनापति ऐसा होना चाहिए, सम्राट्, जिसके लिए सेना लड़े। जिसके लिए एक-एक सैनिक प्राण दे सके, हमें ऐसे सेनापति की आवश्यकता है।"

सम्राट् ने झटके से सिर उठाया; हँसकर बोले, "सुनती हो, महारानी ! आर्य राक्षस आज कैसी उलटी बातें कर रहे हैं ! तुम्हें हो क्या गया है, महामात्य ? ऐसा सेनापति होगा तो राजा की क्या जरूरत है ! सेना तो राजा के लिए लड़ती है, राजा के लिए प्राण देती है। सेनापति तो, बस, उसका संचालन-भर करता है। सेना उसके संकेत पर चलती है।"

"यही तो मैं भी कह रहा हूँ देव ! वैसे सेनापति तो अनेक हैं, मैं भी हूँ, पर सेनापति ऐसा ही चाहिए, जिसके लिए सेना प्राण देने को तैयार हो।"

"अर्थात् ?" राजा कुछ समझ नहीं पाए; बोले, "तुम लोग कुछ समझ रही हो ? तुम बताओ, महारानी ! और तू ओ असिता ! कुछ समझी ?"

रानियों की तरह दासियों ने भी आश्चर्य के साथ हाथ हिलाकर ना कर दी।

राक्षस की सहनशक्ति टूटने-टूटने को हो रही थी। उन्होंने भारी स्वर में कहा, "महारानी से मेरा निवेदन है, मैं सम्राट् को कुछ बहुत आवश्यक सूचनाएँ देना चाहता हूँ। उसके लिए महाराज को एकान्त चाहिए।"

"नहीं-नहीं, मुझे एकान्त नहीं चाहिए।" राजा ने दोनों हाथ उठाकर कहा, "इनसे छिपाकर रखने लायक मेरे पास कुछ भी तो नहीं, कुछ भी नहीं है, महामात्य, तुम जल्दी से कहो! अब निद्रा आ रही है।"

"निद्रा को भंग करने का अवसर है, देव!" राक्षस का स्वर कठोर हो गया, "महारानी, मेरी प्रार्थना स्वीकार करें!"

इस बार उनके नेत्रों की तीखी चमक के कारण जैसे सभी सहम-से गए। सबसे पहले महारानी उठीं।

"कल्याण हो, देवि!" राक्षस ने आशीर्वाद दिया।

महारानी सिर झुकाकर चली गईं, पीछे-पीछे और रानियाँ तथा दासियाँ भी बाहर निकल गईं। अंगरक्षिकाएँ चुपचाप मूर्तियों की तरह खड़ी रहीं। उनकी ओर एक दृष्टि डालकर राक्षस ने कहा, "बड़ी विकट स्थिति है, सम्राट्, ध्यान दीजिए! इस समय उत्तर के कितने ही वीर और शक्तिशाली राजा अपने प्रचण्ड योद्धाओं के साथ मगध पर आक्रमण कर रहे हैं। उन सैनिकों को अपने-अपने स्वामी पर निछावर होने में जरा भी दुख नहीं होगा, साथ ही वे मौर्य चन्द्रगुप्त को भी चाहते हैं। हमारी सेना के लिए भी एक ऐसा ही व्यक्तित्व चाहिए, जिसकी ललकार पर सेना अपना तिल-तिल कटा दे।"

सम्राट् ने क्रोध के साथ कहा, "तो ऐसा ही व्यक्ति खोज निकालना तुम्हारा काम है, महामात्य, मेरा तो नहीं।"

राक्षस ने दाँत से होंठ काटकर कहा, "ऐसा व्यक्ति एक ही है, देव, आप स्वयं। आपको सेना के साथ खड़ा होना पड़ेगा।

आपकी ललकार सुनकर सेना का बल दुगुना हो जाएगा।"

"मैं ?" सम्राट् के चेहरे का रंग फक् पड़ गया।

"मगध की रक्षा करनी है तो यही होगा। मगध सबसे पहले आपका है, महाराज !" राक्षस ने हाथ मलते हुए कहा।

"पर मैं सम्राट् होकर..."

"इसीलिए मगध की रक्षा का सारा भार आपके ऊपर है।"

पल-भर तक सम्राट् उनकी ओर घूरते रहे, फिर सहसा उठकर बोले, "नहीं; मैं सम्राट् हूँ ! सेना को मेरी आज्ञा सुनाओ, वह युद्ध करेगी। इसके लिए मैं क्यों जाऊँ !" और सिर झटककर सम्राट् चले गए।

राक्षस अकेले खड़े रहे। उनकी आँखों में आँसू भर आए। एक दिन उन्हें इसी राजभवन में एक सम्राट् से लड़ना पड़ा था। इसलिए नहीं कि वह सेना के साथ चले, बल्कि इसलिए कि वह सेना में सबसे आगे-आगे हाथी पर बैठकर नहीं, बल्कि व्यूह के बीचोंबीच सुरक्षित होकर चले, क्योंकि उसकी रक्षा भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी राज्य की।

उत्तरीय से आँखें पोंछकर राक्षस चुपचाप बाहर निकल पड़े।

१६

आर्य राक्षस असावधान नहीं थे। उन्होंने समझ लिया कि महापराक्रमी नन्द सम्राट् के बाद अब मगध का सारा भार स्वयं उन्हें ही सँभालना है। पता नहीं किस कारण से आर्य शकटार सब कुछ त्यागकर तपोवन में चले गए थे। महाराज की हत्या का दृश्य देखकर शायद उन्हें संसार की व्यर्थता पर पीड़ा हुई हो।

उसके बाद महाराज सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाकर राक्षस ने नन्दों के कुल का नाम जगाए रखने का प्रयास जरूर किया, पर वह केवल राजा हैं। राजा को मिलने वाले सारे सुख भर उन्हें प्रिय हैं, राजा के कर्तव्यों से उनका कोई लगाव नहीं।

शत्रुओं की विशाल सेना सीमाओं पर मगध के शासन को कुचलती हुई पाटलिपुत्र के निकट आती जा रही थी। मगध की रक्षा के लिए राक्षस स्वयं भी सेनापति भद्रशाल के साथ मैदान में उतर पड़े। चारों दिशाओं में सेना-ही-सेना दिखाई पड़ने लगी। देखकर आँखें फटी-फटी-सी रह जातीं। सुना बहुत था, पर इतनी

विशाल सेना की कल्पना तक नहीं होती थी। जिधर देखो, सैनिक-ही-सैनिक, शस्त्र-ही-शस्त्र। हाथी-घोड़ों की चिंघाड़ और हींस के साथ ही सैनिक शिविरों में बजने वाले उत्तेजक बाजों की आवाज से पाटलिपुत्र का वातावरण ही बदल गया।

तैयारी लगभग पूरी हो चुकी थी। शत्रु-सेना भी काफी पास आ चुकी थी। उसको थोड़ी ही दूर पर शिविर डालकर पड़े कई दिन बीत चुके थे। गुप्तचर इतना तो बता पाते थे कि वे लोग एक पल के लिए भी असावधान नहीं होते, रात-दिन उनकी सेना में एक जैसी हलचल रहती है; पर वे आक्रमण कब करेंगे, न इस बारे में कुछ पता चलता था, न इसी का अनुमान लग पा रहा था कि छावनी के भीतर क्या हो रहा है।

अपने गुप्तचरों को इस प्रकार असफल होते देखकर महामात्य राक्षस मन-ही-मन चाणक्य की प्रशंसा करते। उन्हें चन्द्रगुप्त की याद आती थी। किशोर-अवस्था में वह कई बार राजसभा में आ चुका था। सम्राट् महापद्म नन्द उसकी चतुरता पर कितने प्रसन्न रहते थे! पर कौन जानता था कि एक दिन वही बालक सम्राट् के लिए काल बन जाएगा!

आर्य शकटार उसे अपना सम्बन्धी कहते थे। पर जिस दिन चाणक्य उसे अपने साथ लेकर नटों के वेश में पाटलिपुत्र से गायब हो गया था, उस दिन महामात्य राक्षस को सन्देह हुआ था, फिर भी उन्होंने इसकी कल्पना न की थी। आज वही किशोर मगध साम्राज्य का सूत्र अपने हाथों में लेने का सपना देख रहा है।

शत्रु के शिविर में भीतर-ही-भीतर क्या हो रहा है, इसे किसी भी तरह जाना नहीं जा सका। चन्द्रगुप्त की आज्ञा का पालन बड़ी कठोरता से हो रहा था। सचमुच लगता था कि एक-एक सैनिक पर हजारों आँखें लगी रहती थीं। जरा-सा उल्लंघन

होते ही उनका विनाश सामने खड़ा हो जाता था।

फिर भी सारा श्रम लगाकर राक्षस ने बड़ी कुशल व्यूह-रचना की। यदि किसी प्रकार सम्राट् सर्वार्थसिद्धि सेना के शिविर में आ खड़े होते तो युग का अर्थ ही बदल जाता। एक बार फिर सम्राट् के पास जाना ही होगा।

सम्राट् ने तुरन्त ही मिलने की अनुमति दे दी। कुछ दिनों से वह एक जैन श्रमण से बहुत प्रभावित थे। जरा भी अवकाश पाते ही श्रमण उनके पास बैठ जाता। धीरे-धीरे सम्राट् को उसका साथ इतना अच्छा लगने लगा कि उसे छोड़ते ही नहीं थे। इस समय भी वह पास ही बैठा था।

आर्य राक्षस को लगा कि वह फिर असफल हो जाएँगे। चारों ओर से उन्हें हर समय असफलता का भय बना रहता है। जहाँ भी जाते हैं, कुछ-न-कुछ अशुभ ही दिखाई पड़ता है। सम्राट् नन्द की हत्या के बाद से ही उनका आत्मविश्वास टूट-सा गया है। पर इससे राज-कार्य में बाधा नहीं आनी चाहिए। वह तो जीवित ही केवल इसलिए हैं कि सम्राट् के हत्यारों को सफल नहीं होने दें और अवसर मिले तो उनका बदला भी चुकाएँ।

उन्होंने सेनापति की भाँति खड्ग माथे से छुआकर सम्राट् को प्रणाम किया, फिर श्रमण की ओर देखकर बोले, "क्षमा करें, श्रमण, मैं इस समय सम्राट् से युद्ध के सम्बन्ध में कुछ···"

श्रमण उठते हुए बोला, "भगवान् जिनेश्वर कल्याण करें! युद्ध की वार्ता में हम जैसे श्रमणों का क्या काम!"

राक्षस को आशा थी कि सम्राट् उस दिन की तरह शायद आज भी विरोध करें, पर वह चुप बैठे रहे। श्रमण बाहर चला गया तो राक्षस ने कहा, "सेना मगध की रक्षा के लिए तैयार खड़ी है, सम्राट्! जब तक एक भी सैनिक जीवित रहेगा, शत्रुओं के पाटलिपुत्र में प्रवेश कर पाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बस, एक बार आपका दर्शन उन्हें मिल जाए तो…"

सम्राट् ने अचानक बात काटकर पूछा, "युद्ध पाटलिपुत्र में ही होगा ?"

कुछ देर तक राक्षस चुप होकर उनकी ओर देखते ही रह गए। वह समझ गए थे कि सम्राट् उनकी बात न सुनकर कुछ और ही सोच रहे थे। बोले, "हाँ, इस समय सबसे सुगम उपाय यही दिखाई पड़ा। सैनिकों का साहस बढ़ाने के लिए सम्राट् एक बार शिविरों में पहुँच जाएँ तो…"

"क्यों ? हमारे सैनिक भी क्या चन्द्रगुप्त और पर्वतक की विशाल सेना से डर गए हैं ?"

"सैनिक भी डर गए हैं !" राक्षस को आश्चर्य हुआ, "हमारे यहाँ कोई भी डरा नहीं है, देव ! सैनिकों के डरने की तो बात ही क्या !"

"तब बार-बार उन्हें साहस बँधाने की क्या बात है ? उनके लिए मेरी आज्ञा ही बहुत नहीं है ? युद्ध करने के लिए ही तो उन्हें धन मिलता है।"

राक्षस का मन ग्लानि से भर गया। वह उठ खड़े हुए ; बोले, "जैसी आपकी आज्ञा ! मैं चलता हूँ।"

अभिवादन करके वह चलने को हुए कि महाराज ने काँपते स्वर में पूछ लिया, "पाटलिपुत्र सुरक्षित है न, आर्य राक्षस ?"

महाराज के इस प्रश्न से काँपकर राक्षस ने उत्तर दिया, "इस महानगरी की रक्षा का भार तो देवताओं पर ही है, सम्राट् !"

वह चले आए।

साँझ को शिविरों का एक और चक्कर लगाकर महामात्य राक्षस अपने भवन में लौट आए। उनका हृदय उत्साह से भरा था। चाहे कोई भी साथ न हो, अकेले राक्षस ही जब तक जीवित

हैं, तब तक मगध की रक्षा का भार उठाए रहेंगे। महापराक्रमी सम्राट् महापद्म नन्द का स्नेह उनसे पल-भर के लिए भी भुलाया नहीं जाता। उनके शत्रुओं का विनाश हो, इससे बढ़कर संसार में और कार्य ही क्या है, जिसके लिए वह जीवित रहें ?

द्वारपाल ने सूचना दी, "आर्य दमन दर्शन करना चाहते हैं।"

"भेज दो !"

दमन ने पहुँचते ही सूचित किया, "बड़ी कठिनाई से शत्रु की सेना से कान्यकुब्ज के एक सैनिक का अपहरण कर लिया गया। उससे सूचना मिली है कि आज तक सारे सेनापतियों के बीच आक्रमण करने की योजना पर विचार होता रहा है। अभी तक कुछ निश्चित नहीं। ठीक-ठीक निश्चय तो सेनापतियों को ही मालूम है, पर कोई विशेष कौशल अपनाकर ही वे आक्रमण करगे।"

"कब तक करेंगे, कुछ आभास मिला ?"

दमन ने कहा, "सैनिक तो कहता है कि अभी किसी विशेष अवसर की प्रतीक्षा की जा रही है। सम्भवतः एक सप्ताह से भी अधिक समय लग जाए।"

राक्षस ने गम्भीरता से सोचते हुए कहा, "कहीं ऐसा तो नहीं है कि किसी और गण या राज्य के सैनिक आने वाले हों ?"

"दूर-दूर तक हमारे गुप्तचर फैले हैं, देव, पर किसी ने ऐसी सूचना नहीं दी।"

"अच्छा, सेनापति भद्रशाल को यह पूरी सूचना देकर भेज दो !"

अधिक देर नहीं लगी। मगध की विशाल सेना का सेनानायक भद्रशाल अपने पद के अनुकूल ही था। लम्बा-चौड़ा पुष्ट शरीर। चौड़े, विशाल कन्धे। आकाश को छूने के लिए उठता-

सा मस्तक। चेहरे पर जैसे तेज छिटक रहा हो। भीतर आते ही उसने प्रणाम किया। महामात्य राक्षस की नीति और कुशलता के साथ ही उनकी वीरता और सेना के संचालन का कौशल देखकर उसे उन पर बड़ी श्रद्धा थी।

"दमन से पूरा समाचार मिला? क्या सोचते हैं आप?"

"शत्रुओं का विनाश करने के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं सोचता, आर्य!"

राक्षस हँसे, "वह तो ठीक है, पर कौशल से शत्रु का नाश करने पर अपनी अधिक सुरक्षा होती है।"

"उसके लिए तो महामात्य की बुद्धि से बढ़कर कोई भी नहीं दिखाई पड़ता।"

महामात्य राक्षस कुछ देर टहलते रहे, फिर बोले, "हमें एक प्रबन्ध तुरन्त करना होगा, पाटलिपुत्र की सेना का एक और खण्ड बनाना होगा।"

"चारों द्वारों की रक्षा के लिए चार खण्ड हैं ही, नगर की रक्षा के लिए भी एक खण्ड सुरक्षित है। यह छठा खण्ड क्या करेगा?" भद्रशाल ने जैसे अपने से ही पूछा, फिर क्षण-भर सोचकर बोल पड़ा, "बाहर निकलकर शत्रु को छकाने के लिए?"

"हाँ! इसके अतिरिक्त एक बात और है। सीमाओं को जीतकर पाटलिपुत्र के निकट इतनी बड़ी सेना जुटाकर भी चन्द्रगुप्त यों ही चुप नहीं बैठा रह सकता। मुझे लगता है कि कौटिल्य कोई चाल खेल रहा है। वह किसी और की प्रतीक्षा कर रहा होगा।"

"किसकी प्रतीक्षा?"

"इसका पता लगाना है। पर इसका उपाय पहले से ही होना चाहिए। सैनिकों की एक और सशक्त टुकड़ी आज ही

रात को यहाँ से बाहर चली जानी चाहिए। पूर्व की ओर से कोई भी ऐसा नहीं, जो शत्रु का साथ दे। सावधानी से जरा घूमकर हमारी टुकड़ी पश्चिम में वाराणसी के आस-पास रहकर प्रतीक्षा करे। यदि कोई सेना इधर बढ़े तो उसे बीच ही में रोक ले। साथ ही पश्चिम की ओर से शत्रुओं को मिलने वाली सहायता को भी छिन्न-भिन्न करती रहे।"

सेनापति ने सन्देह-भरे स्वर में कहा, "कहीं ऐसा न हो कि हमारी सेना का एक और भाग व्यर्थ ही जाए!"

"मैं इस पर सोच चुका हूँ। कौटिल्य बड़ा चतुर है। यह भी सम्भव है कि कान्यकुब्ज का सैनिक जान-बूझकर हमारे गुप्तचरों के हाथ पड़ गया हो। केवल इसलिए कि हमें इधर-उधर की सूचनाएँ देकर बहका दे, असावधान कर दे। पर हमारी सेना का छठा खण्ड तब भी व्यर्थ नहीं जाएगा। मौका पड़ने पर शत्रुओं पर पीछे से आक्रमण भी तो कर सकता है!"

सेनापति प्रसन्न हो गया। उसने खड़े होकर अभिवादन किया।

राक्षस ने चेतावनी दी, "फिर भी हमें किसी प्रकार आलस्य नहीं करना चाहिए! कौटिल्य की कूटनीति और चन्द्रगुप्त की सैनिक-कुशलता दोनों मिलकर किसी भी समय हमें संकट में डाल सकती हैं।"

सेनापति ने जाते-जाते कहा, "आर्य निश्चित रहें!"

१८

और महामात्य राक्षस की बात ही सच हुई। उसी रात सहसा पहरेदारों ने शंख और दुन्दुभि बजाकर सेना को सतर्क कर दिया। स्वयं राक्षस भी अपने सेनानायकों के साथ दीवार पर चढ़कर उत्सुकता से शत्रुओं की टोह लेने लगे। सबसे ऊँचे स्थान पर खड़े होकर उन्होंने देखा— दूर-दूर तक पाटलिपुत्र के चारों ओर असंख्य मशालें जल रही हैं। लगता था कि पाटलिपुत्र गहरी नींद में सोया हुआ काले रंग का कोई विराटकाय दैत्य है, जिसे बाँधने के लिए चारों ओर से प्रकाश की मोटी रस्सी तैयार कर दी गई है।

किन्तु, पाटलिपुत्र सो नहीं रहा है। राक्षस को पहले से ही सन्देह था—जो बात कोई भी साधारण आदमी सोच लेता है, चाणक्य उससे अलग ही सोचेगा। और चन्द्रगुप्त अलग ढंग से ही योजना बनाकर सेना को नए साँचे में ढाल देगा। हर व्यक्ति समझता था कि पाटलिपुत्र के पश्चिमी द्वार पर ही जमकर युद्ध होगा। पश्चिम के मार्ग से आने वाली सेना के लिए इतनी लम्बी

दीवार का चक्कर काटकर दूसरे द्वार तक पहुँच पाना कठिन हो सकता है, पर चन्द्रगुप्त के लिए यह कोई असम्भव कार्य नहीं होगा। इसी कारण आर्य राक्षस ने पहले ही सावधानी बरती। उन्होंने निश्चय किया कि हर द्वार पर रक्षा का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। किसी भी ओर से आक्रमण हो सकता है।

संकट के लिए कोई मार्ग निश्चित नहीं होता। यदि युद्ध किसी एक ही द्वार पर हुआ, तो सेना के बाकी तीनों खण्ड बाहर निकलकर शत्रुओं को चारों ओर से घेर लेंगे। सम्राट् महापद्म नन्द नहीं रहे तो क्या हुआ, राक्षस ने तो मगध की रक्षा का भार उठा ही रखा है। इस बार चाणक्य और चन्द्रगुप्त निकट आ भर गए तो लौट नहीं सकेंगे। सारा पाटलिपुत्र सोता रहे। महाराज सर्वार्थसिद्धि भी महल में आनन्द से सोए रहें। अकेला राक्षस अपनी भुजाओं के बल पर साम्राज्य की रक्षा करेगा।

उन्होंने सेनापति को आज्ञा दी, "कहीं भी अपनी ओर से शत्रु पर आक्रमण करने की चेष्टा न की जाए, आर्य भद्रशाल ! जहाँ वे स्वयं आक्रमण करें, वहीं अधिक-से-अधिक शक्ति लगा-कर उन्हें नष्ट किया जाए।"

सेनापति के मन में राक्षस के प्रति और भी आदर बढ़ गया था। यदि पहले ही उनका परामर्श मानकर चारों ओर रक्षा का प्रबन्ध न किया होता, तो इस समय क्या स्थिति होती ? एक ही जगह जमी हुई सेना को तुरन्त चारों ओर फैलाना पड़ता।

थोड़ी देर तक दीवार पर इधर-से-उधर चक्कर काटकर राक्षस अपनी सेना का निरीक्षण करते रहे। हर जगह अलग-अलग ढंग से व्यूह बनाकर सामना करने का सुझाव दिया; फिर गंगा के तट की ओर पहुँचकर वह एकाएक बोले, "बस, यहीं ! सुनते हो, सेनापति ? एक यही स्थान ऐसा है, जहाँ शत्रुओं का सबसे बड़ा कूटनीतिज्ञ चाणक्य और उनका प्रतिभाशाली

सेनापति चन्द्रगुप्त मौर्य पराजित किया जा सकता है।"

सेनापति ने सन्देह-भरे कौतूहल के साथ पूछा, "क्या वे दोनों इसी ओर से आएँगे ?"

राक्षस हँस पड़े ; बोले, "नहीं, अभी नहीं, पर उन्हें आना पड़ेगा। अभी तो आप चारों द्वारों पर समान शक्ति बनाए रखिए। शत्रु को कहीं एक भी छेद बनाने का अवसर न मिले, बाकी मैं देख लूँगा।"

उनके इस संकेत का क्या अर्थ है, यह सेनापति भद्रशाल नहीं समझ पाया। फिर भी उसे विश्वास हो गया कि आर्य राक्षस किसी-न-किसी युक्ति से इसे कर ही दिखाएँगे।

अपने भवन में पहुँचकर आर्य राक्षस ने पल-भर भी विश्राम नहीं किया। उन्होंने तुरन्त कितने ही चरों को अनेक आदेश दिए। उन्हें तरह-तरह की युक्तियाँ बताकर भेजा, फिर खड्ग उठाकर बोले, 'जब पिता जैसे सम्राट् जीवित थे, तो तुझे उनकी शक्ति का भी भरोसा था। आज मगध की रक्षा के लिए तू अकेला है। तुझ पर रक्षा का भार ही नहीं, सम्राट् के हत्यारों को दण्ड देने का भार भी है…"

सहसा मारू बाजे बज उठे और दूसरे ही क्षण चारों ओर से भयंकर कोलाहल मच गया। राक्षस ने सिर हिलाकर कहा, "मौर्य ! तू बड़ा चतुर है। कौटिल्य जैसा राजनीतिज्ञ तेरे भाग्य की रचना कर रहा है। पर तू जानता नहीं, राक्षस अकेला ही तुम दोनों का वध करके नन्द-सम्राट् की हत्या का बदला चुकाएगा।"

घोड़े पर सवार होकर वह उत्तर की ओर चल पड़े।

भद्रशाल खड़ा हुआ एकटक गंगा की ओर देखे जा रहा था। राक्षस ने पहुँचते ही कहा, "बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। शत्रु बहुत चतुर है, सेनापति ! एक सप्ताह तक यों ही पड़े

रहने का निश्चय करके वह रातों-रात पाटलिपुत्र पर धावा बोल सकता है और वह भी इतनी सावधानी से कि हमारे गुप्त-चरों को उसके भेदों की गन्ध तक न मिले । उस बुद्धि की बात सोचो, जिसने सेना का इस प्रकार संचालन किया कि देखते-ही-देखते उजाड़ पड़े मैदान में, हरे-भरे खेतों में या रेतीले प्रदेश पर समुद्र-सा लहरा उठा । जिधर देखो, हाथी, घोड़े, रथ और अपार मानव-समूह ।"

वह ध्यान से गंगा की ओर से दीवार की तरफ बढ़ती शत्रु-सेना की ओर देखते रहे, फिर बोले, "इस ओर भीतर मगध की प्रसिद्ध हस्ति-सेना व्यूह बनाकर खड़ी करवा दो !"

सेनापति आश्चर्य से बोला, "भीतर ? पर बीच में तो दीवार है, आर्य ! आज्ञा हो, तो उत्तर का द्वार खोलकर मैं हाथियों की सेना इस प्रकार बाहर भेजूँ कि देखते-ही-देखते शत्रु तीन ओर से उसके घेरे में फँस जाएँ ।"

"नहीं !" राक्षस ने सिर हिलाकर कहा, "तुम तो जानते हो, मौर्य सेनापति यवनराज सिकन्दर के शिविर में रहकर उनकी युद्धकला भी सीख चुका है । देखते-ही-देखते सिकन्दर के सैनिकों ने बरछों से पता नहीं कितने हाथियों की आँखें फोड़ दी थीं और कुल्हाड़ी लेकर उन्हें काठ की तरह चीर डाला था । मैं मगध के हाथियों को उस प्रकार मरने नहीं देना चाहता ।"

उन्होंने उँगली उठाकर काफी दूर तक संकेत किया ; बोले, "वहाँ, उस छोर तक की दीवार टूट भी तो सकती है !"

"जब तक मगध का एक भी सैनिक जीवित है, तब तक दीवार की एक ईंट भी नहीं खिसक सकती ।" सेनापति का ऊँचा माथा जैसे और भी ऊँचा उठ गया ।

राक्षस ने कहा, "लेकिन, पीछे चट्टान से भी मजबूत हाथियों की एक दीवार बनाकर यदि इस दीवार को गिरा दिया जाए,

तो क्या बुरा है !"

सेनापति जैसे कुछ समझते हुए बोला, "अर्थात् हम स्वयं गिरा दें ?"

"नहीं, यह श्रम भी शत्रुओं को ही करने दो। वे और निकट भी आ जाएँगे। हमारे गजराजों को उन्हें रौंद देने के लिए दूर तक नहीं जाना पड़ेगा।"

"आर्य !" भद्रशाल चकित होकर उन्हें देखता ही रह गया।

"हाँ, शत्रुओं की विशाल सेना ने पाटलिपुत्र को घेर रखा है। ऐसे समय में भी क्या तुम यह समझते हो कि राक्षस गज-राजों को चैन से सोने देगा ? पर अभी नहीं। जिस दिन आवश्यकता पड़ेगी, मैं बताऊँगा।"

"कब ?"

"जब मैं देख लूँगा कि गज-सेना का पहला गजराज एक पाँव चन्द्रगुप्त की छाती पर रखेगा और दूसरा चाणक्य की। अभी तो उनकी शक्ति का अनुमान भी नहीं लगा। देखो, टिकते भी हैं या नहीं। पर याद रखना, यदि कहीं से शत्रु आक्रमण करना छोड़कर लौट भी जाए, तो भ्रम में मत पड़ना ! वे छल भी कर सकते हैं।"

मगध के पराक्रमी सेनापति भद्रशाल को युद्ध का कम ज्ञान नहीं है। सम्राट् महापद्म नन्द की अधीनता में उसने कितनी ही बार शत्रुओं को पछाड़ा है। उनकी नीतियों के जाल और व्यूह तोड़ चुका है, फिर भी आर्य राक्षस के मुँह से ऐसी बातें सुनना उसे खराब नहीं लगता। वह जानता है कि महामात्य केवल रक्षा करने के लिए नहीं लड़ रहे हैं, शत्रुओं को जड़-मूल से काट देना भी उनका लक्ष्य है। आज पहली बार वह ऐसा दोहरा युद्ध देख रहा है। इसका संचालन राक्षस जैसे सेनापति ही कर सकते हैं। उनकी मार के आगे शत्रु कब तक टिकेंगे !

पर शत्रु टिके रहे। छः दिन तक भयानक युद्ध होता रहा। दोनों ही पक्षों के कितने ही सैनिक खेत रहे, पर शत्रु को ही अधिक हानि उठानी पड़ी। राक्षस की नीति को भेदकर शत्रु कहीं दीवार में एक छेद तक नहीं कर पाए। रात, दिन किसी समय आक्रमण हो जाता और मगध के सैनिक उस भाग को नष्ट ही कर डालते। पर शत्रु भी ऐसा छोटा नहीं है। उसके उत्साह में जरा भी कमी नहीं आई है। पराजय की हीनता के कारण आक्रमण कम नहीं हो रहे हैं। उसका वेग बढ़ता ही जा रहा है।

राक्षस रात-दिन में कब सोते हैं ? सोते भी हैं या नहीं, कोई समझ नहीं पाता। सेनापति ने गज-सेना का व्यूह बनाकर उत्तर की दीवार के साथ खड़ा कर दिया है। ऐसे ही दो व्यूह और बने हैं। पश्चिम की ओर दीवार के साथ कई हजार रथ खड़े हैं और पूव की ओर लगभग आठ हजार घोड़े। फिर भी आर्य राक्षस प्रतीक्षा कर रहे हैं। गंगा की ओर देखते हुए वे जैसे सपने में बुदबुदाते हैं, 'यहाँ, ठीक इसी जगह। उधर गंगा की लहरें हों और इस ओर हाथियों का समुद्र। दोनों के बीच बाढ़ के थपेड़ों से उखड़कर छटपटाती हुई शत्रु-सेना हो और गजराज के पैरों के नीचे कुचला हुआ हो, मौर्य सेनापति·· हत्यारा कौटिल्य···'

पर वे दोनों इस ओर कैसे आएँगे, यह सेनापति भद्रशाल की समझ में नहीं आता।

आय राक्षस कहते हैं, "वे आएँगे ! उन्हें आना होगा !"

नीचे उतरकर राक्षस घोड़े पर बैठे और सेना का निरीक्षण करने के लिए पश्चिम की ओर चल पड़े। ठीक उसी समय आवाज सुनाई पड़ी, "महामात्य की जय हो !"

रास खींचकर राक्षस एकाएक ठिठक गए, "कौन है ?"

पास आकर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "दमन का प्रणाम

स्वीकार हो !"

राक्षस चुप ही रहे। दमन ने कहा, "अनर्थ हो गया ! सम्राट् नगर छोड़कर तपोवन की ओर चले गए।"

"तपोवन ! क्यों ?"

"इस भयानक युद्ध के कारण, कहते हैं, उन्हें विराग हो गया है। यह सब देखकर उन्हें पीड़ा होती है।"

राक्षस ने दाँत पीसकर कहा, "पीड़ा होती है कायर ! और···"

"सम्राट् के साथ-साथ वह जैन श्रमण भी सुरंग के मार्ग से ही बाहर चला गया है।"

राक्षस की आँखें अँधेरे में जलने-सी लगीं ; बोले, "वह भी तपोवन में ही है ?"

"नहीं ! मैंने उसे पकड़ने के लिए सैनिक भेजे थे, पर वह सम्राट् को तपोवन में अकेला छोड़कर पता नहीं कहाँ खो गया।"

महामात्य राक्षस बड़ी देर तक खड़े सोचते रहे। सचमुच कोई भी उनका साथ नहीं दे रहा है। कहीं वह पागल तो नहीं हो गए हैं ? आखिर यह सब किसके लिए किया जा रहा है ? उन्हें पुत्र की भाँति चाहने वाले नन्द-सम्राट् अब धरती पर नहीं रहे। क्या केवल इसी कारण हर व्यक्ति उनसे आँखें फेर लेगा ? फेर ले, उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। जब तक सम्राट् की हत्या का बदला नहीं चुक जाता, राक्षस चैन स नहीं बैठेंगे।

१६

ग्लानि में डूबे मन के कारण लगा जैसे सारा शरीर भी थककर चूर हो गया है। आज चौदह दिन से महामात्य राक्षस कितने उत्साह के साथ युद्ध कर रहे हैं। शत्रु की एक भी चाल चलने नहीं पा रही है। वह जहाँ भी आक्रमण करता है, वहीं मार खा जाता है।

और यदि उनकी नई चाल चल गई, तो कल सचमुच गंगा के तट पर रेत का एक-एक कण खून से लाल हो जाएगा। आर्य राक्षस उस खून को देखकर हँसेंगे। उसमें हत्यारे का खून भी तो मिला होगा!

वह विश्राम नहीं कर सके। बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहे हैं। चरों ने अब तक सूचना नहीं दी। पता नहीं क्या हुआ?

उन्होंने सुरंग के मार्ग से कई चरों को पास के जंगली इलाके में पहुँचा दिया है। वे इस समय प्रचार कर रहे होंगे कि मगध की सेना का एक बहुत बड़ा भाग पश्चिम की ओर से उन पर टूट पड़ेगा। ये संवाद झूठा नहीं है। अपनी सेना के छठे खण्ड को

आर्य राक्षस ने आदेश दे रखा है कि वह धीरे-धीरे बढ़कर पीछे से शत्रुओं पर झपट पड़े। पर एक ही जगह से नहीं, दो स्थानों से—एक पश्चिम के द्वार पर और दूसरा दक्षिण के द्वार पर। उनका आक्रमण होते ही भीतर से द्वार खोलकर रथी और घुड़सवार टूट पड़ेंगे। दुतरफे धावे को झेल सकना बीच में फँसे शत्रु के लिए असम्भव होगा। फिर भी हो सकता है, वे बच निकलें, इसी कारण इस आक्रमण का प्रचार भी करा दिया गया है। साथ-ही-साथ गुप्तचरों ने ही उन्हें यह सुझाव भी दिया होगा कि गंगा के तट की ओर मगध की सेना गिनती भर को है। उस ओर से आक्रमण हो तो पाटलिपुत्र की दीवारें ढह जाएँगी।

शत्रु के गुप्तचर भी पश्चिम की ओर से आती मगध की सेना का समाचार देंगे ही। इस जाल में फँसकर पाटलिपुत्र की दीवार तोड़ने के लोभ से चन्द्रगुप्त और चाणक्य को उत्तर की ओर आना ही पड़ेगा।

आज पश्चिम की ओर से एक भी आक्रमण नहीं हुआ था, इसी से लगता है चाल चल गई। दोपहर के बाद गुप्तचरों ने बताया भी है कि शत्रुओं की सेना की एक टुकड़ी पश्चिम से घूमकर उत्तर की ओर बढ़ रही है। पर अभी तक पीछे से झपट पड़ने वाली मगध की सेना के बारे में कोई खबर नहीं मिली।

आर्य राक्षस इसी चिन्ता में यहाँ से वहाँ भटक रहे हैं। शत्रु इतना चतुर है, ऊपर से एक और दुर्भाग्य—राजधानी छोड़कर सम्राट् सर्वार्थसिद्धि ही भाग गए! हुँः!

टहलते-टहलते जाँघें भर आईं। चौदह दिन से लगातार श्रम करते रहने की पीड़ा आज राक्षस की नस-नस में उभर रही है, पर वह विश्राम भी तो नहीं कर सकते!

आहट सुनाई पड़ी। वह चौंककर द्वार की ओर देखने लगे। द्वार हिला, खुला और खून में डूबा एक सैनिक भीतर आकर गिर पड़ा।

"क्या हुआ ? कौन हो तुम ?"

"सावधान हों, आर्य ! भयानक संकट आ गया है ! वाराणसी की ओर से आकर शत्रु पर आक्रमण करने वाली मागध सेना का अकेला सैनिक मैं बचा हूँ।"

"क्या हुआ ? यह सब कैसे हो गया ?" राक्षस की मुट्ठियाँ भिंच गईं !

"हम जंगल पार करके दो टुकड़ियों में बँटकर आपकी आज्ञा के अनुसार दो द्वारों पर पीछे से आक्रमण करने वाले थे, पर जंगल से बाहर आते ही स्तब्ध रह गए। सामने शत्रु-सेना खड़ी थी। सीमाओं को पहले ही अधिकार में करके शत्रु ने हर जगह विकट जाल फैला रखा है। कहीं कोई चूक नहीं। युद्ध आरम्भ हो गया। इतना ही होता तो कोई बात नहीं थी। देखते-ही-देखते उत्तर और दक्षिण की ओर से शत्रुओं के सैनिक टिड्डी-दल की तरह हम पर टूट पड़े। दो भागों में बँट जाने के कारण हमारा व्यूह पहले ही टूट चुका था। लगता था कि हम चारों ओर से किसी विशाल समुद्र में घिर गए हैं। मैं घायल हो एक खड्ड में गिर पड़ा था। पता नहीं कब तक वहीं पड़ा रहा। सुरंग का मार्ग मालूम होने के कारण किसी प्रकार सूचना देने पहुँच सका हूँ।"

राक्षस को काठ मार गया। शत्रु ने उन्हीं की नीति का सहारा लेकर उनका ही नाश कर दिया। लज्जा के कारण उनका चेहरा काला पड़ गया। कहाँ वह प्रतीक्षा कर रहे थे कि आज रात ही शत्रु के दो बहुत बड़े भागों को रौंदकर रख देंगे और कहाँ उनकी अपनी सेना का ही एक बहुत बड़ा भाग नष्ट हो

गया ।

चारों ओर से भयानक हाहाकार सुनाई पड़ रहा था। विजय की खुशी में मतवाले शत्रु अब एक पल के लिए भी आक्रमण नहीं रोकेंगे। होने दो ! भयानक युद्ध होने दो ! सेना का एक भाग नष्ट हो ही गया तो क्या हुआ ? अभी तो इन्हीं दीवारों में बन्द रहकर महामात्य राक्षस साल-भर तक शत्रु से लड़ते रह सकते हैं। हाँ, सुरक्षा के लिए उन्हें एक और सुरंग बनवानी ही पड़ेगी। जब तक आवश्यक सामग्री बाहर से मिलती रहे, तब तक भण्डारों में भरे सामान का एक कण भी छूना ठीक नहीं है।

"महामात्य की जय हो ! सारा प्रबन्ध हो चुका है। सुरंग के उस ओर रथ भी तैयार है।"

"क्यों, किसलिए ?"

दमन ने आश्चर्य से आँखें फाड़कर महामात्य राक्षस की ओर देखा; बोला, "स्वामी ! आज आप तपोवन में सम्राट् का दर्शन करने के लिए जाने वाले थे।"

"ओह ! भूल गया था। सोचता हूँ, जाने ही दूँ। जब सब कुछ राक्षस को ही करना है, तो सम्राट् जहाँ भी आनन्द से रह सकें, रहें—तपोवन हो या राजभवन।"

दमन ने पास आकर कहा, "यह चीत्कार सुन रहे हैं ? आपने देखा नहीं, देव, मगध की सेना का मन धीरे-धीरे टूट रहा है। ऐसे अवसरों पर वह हमेशा अपने सम्राट् को अपने पास देखती रही है। पर अब उसे लगता है कि वही नहीं, उसके महामात्य भी अनाथ हैं।"

राक्षस ने गहरी साँस खींचकर कहा, "तू ठीक कहता है, दमन ! एक बार सम्राट् को किसी भी प्रकार सेना के बीच लाना ही होगा। चल, मगध की रक्षा के लिए राक्षस सब कुछ सहेगा। अपमान का घूँट भी पी लेगा।"

दमन ने सूचित किया, "आपकी आज्ञा के अनुसार देवी तथा आपके परिवार को सेठ चन्दनदास के यहाँ पहुँचाने का प्रबन्ध भी हो चुका है।"

"ओऽऽह !" राक्षस ने गहरी साँस खींचकर आँखें मूँद लीं। "यह दिन भी देखना ही पड़ेगा। कहाँ हैं वे लोग ?"

दमन उन्हें भवन के पिछले द्वार की ओर ले गया। सब कुछ ठीक था। महामात्य की प्रतीक्षा में उनकी पत्नी और बच्चे रथ के पास खड़े थे। राक्षस के निकट पहुँचते ही उन्होंने प्रणाम किया। उनके सिर पर हाथ फेरते हुए राक्षस ने कहा, "चिन्ता मत करना। मित्र चन्दनदास पर मेरा अपने से भी बढ़कर विश्वास है। मैं निश्चिन्त होकर मगध की रक्षा कर सकूँगा।"

किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा। केवल गीली आँखें सब कुछ कह गईं। देवी ने धीरे से महामात्य राक्षस के हाथ से मुद्रा निकालकर अपनी अँगुली में पहन ली और चरण छूकर रो पड़ी।

महामात्य अपनी निर्बलता छिपाने के लिए होंठ काटकर तुरन्त निकल आए। दमन से बोले, "चल, मार्ग दिखा।"

वे सुरंग में उतर गए।

उन्होंने तपोवन में प्रवेश किया ही था कि दो-तीन व्यक्ति तेजी से दौड़े हुए आए और उनके सामने धरती पर लेट गए।

दमन ने आश्चर्य से पूछा, "क्या हुआ?···बाहुक, बोलता क्यों नहीं ?"

"महामात्य प्राणदान दें ! तपोवन में किसी ने सम्राट् की हत्या कर दी !"

"बाऽहुऽक !" सहसा धैर्य खोकर महामात्य राक्षस चीख पड़े, "सर्वनाश !"

दमन ने उन्हें सहारा दिया। अपने स्वामी, मगध के प्रतापी महामात्य आर्य राक्षस को उसने पहली बार इस प्रकार टूटकर

गिरते देखा था। बोला, "आर्य, शान्त हों !"

राक्षस के होंठ कँपकँपाए। वह सूनी आँखों से आकाश की ओर देखते हुए बुदबुदा उठे, "नीच···हत्यारे कौटिल्य ! तूने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। नन्द-वंश को समूल नष्ट कर दिया !"

वह दमन के कन्धे का सहारा लेकर डगमगाते पाँवों से तपोवन के भीतर चल पड़े। बाहुक आगे-आगे रेंग-सा रहा था।

१०

अभी कुछ ही दिन पहले पाटलिपुत्र खून में डूबा था ! उसकी गली-गली से चीखने-चिल्लाने और कराहने की आवाजें उठ रही थीं। पर आज वह सब किसी भयानक सपने की छाया की तरह धीरे-धीरे लोगों के मन से उतर गया था।

पाटलिपुत्र एक बार फिर कुसुमध्वज बन गया। चारों ओर फूल-ही-फूल थे। पुष्पपुर का एक-एक कण फूलों के पराग से गमक उठा था।

आज चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक था।

मलयकेतु ने कल संध्या को ही अवसर खोजकर चन्द्रगुप्त को याद दिलाया था, "उस रोज जब सामन्त देवदत्त के यहाँ मैं पिताश्री महाराज पर्वतक की ओर से आधे राज्य का वचन लेने गया था, उसी दिन आर्य को देखकर मुझे विश्वास हो गया था कि एक दिन यह सूर्य चमकेगा।"

चन्द्रगुप्त मन-ही-मन हँसा। मलयकेतु ने कितनी चतुरता

से आधा राज्य पाने का वचन याद दिलाया था। ऊपर से बोला, "तुम्हारे जैसे मित्रों के प्रताप से ही तो यह सब हुआ है, मलय ! पर अभी तो मैं मगध का राजा हुआ ही नहीं !"

"क्यों ?" मलयकेतु आश्चर्य से बोला, "आपके प्रताप से मगध की एक-एक ईंट हिल गई। यहाँ का द्रोही शासन समाप्त हो गया। नन्द-वंश का अन्तिम दीपक भी बुझ गया और नन्दों का रक्षक दुस्साहसी महामात्य राक्षस भी तपोवन की ओर भाग गया। अब कौन-सी बाधा रह गई ?"

"बाधा न सही, पर जब तक राज्याभिषेक न हो जाए, जब तक मेरे हाथों में राजदण्ड न आ जाए और जब तक अन्य राजा मुझे मगध का शासक न मान ल, तब तक तो इस राज्य के अधिकारी महामात्य राक्षस ही हैं।"

"आर्य तो विनोद कर रहे हैं !" मलयकेतु हँस पड़ा। "राक्षस और मगध का अधिकारी !"

"आर्य कौटिल्य से पूछ देखो, मलय !"

चाणक्य ने प्रशंसाभरी दृष्टि से अपने शिष्य की ओर देखते हुए कहा, "वृषल ठीक ही तो कहता है, युवराज ! जब तक राज-दण्ड हाथ में न हो और राजमुकुट मस्तक पर न रखा जाए, तब तक अधिकार कैसा और किस पर ? मगध में चन्द्रगुप्त का शासन चल भी कैसे सकता है ?"

"शासन सेना के बल पर चलेगा, आचार्य !" मलयकेतु ने कहा, "जिस सेना के बल पर शासन मिला है।"

"नहीं !" चाणक्य ने सिर हिला दिया, "उग्रसेन महापद्म नन्द की विशाल सेना भी प्रजा के मन में उसके लिए प्यार नहीं उपजा सकी थी।"

मलयकेतु चुप रह गया था।

उसी समय चन्द्र ने आज्ञा दी, "कल राज्याभिषेक के अवसर

पर महाबली आर्य पर्वतक, राजकुमार भद्रभट, राजपुत्र भागुरा-यण आदि सभी को आमन्त्रित किया जाए। किसी के भी राज्याभिषेक के समय इतने बड़े-बड़े वीरों, योद्धाओं और राजपुरुषों का होना गर्व का कारण है। मुझे ही यह सौभाग्य मिला है, आर्य !"

और तुरन्त ही पाटलिपुत्र के रंक से लेकर बड़े-बड़े सामन्तों तक को राज्याभिषेक का उत्सव मनाने की आज्ञा सुना दी गई।

पाटलिपुत्र नगर नए सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य तथा महामात्य आचार्य चाणक्य की उदारता तथा सहृदयता के कारण उन पर मुग्ध हो गया था। उग्रसेन नन्द की निरंकुशता तथा उसके बाद सर्वार्थसिद्धि की विलासिता से सब ऊब चुके थे। ऊपर से इधर वर्षों से हत्या और युद्ध का एक-न-एक संकट सिर पर छाया रहता था। उस आतंक से छुटकारा पाकर प्रजा ने चैन की साँस ली।

फिर भी चाणक्य जानता था कि अभी तक पाटलिपुत्र में नन्द-सम्राट् के अनेक भक्त तथा महामात्य राक्षस के लिए प्राण न्यौछावर कर देने वाले मित्र रहते हैं। प्रजा वैसे भी राक्षस के व्यवहारों को नहीं भूली थी। इसलिए किसी दिन कुछ भी हो सकता था। सम्राट् की रक्षा के लिए उसने हर प्रकार से सावधानी बरती। खाने-पीने, उठने-बैठने, किसी भी गतिविधि पर गुप्तचरों का एक पूरा समूह सम्राट् की देख-रेख करता। सम्राट् के सोने का प्रबन्ध रोज ही कक्ष बदलकर किया जाता था। कोई भी नहीं जानता था कि आज सम्राट् कहाँ सोएँगे।

इतना होते हुए भी सन्देह बना ही रहता था। अन्त में सम्राट् ने एक दिन कौटिल्य से कहा, "इसका सबसे अच्छा उपाय एक ही है, आर्य !"

कौटिल्य ने कुछ सोचते हुए कहा, "राक्षस जैसे उदार, योग्य

और स्वामिभक्त राजनीतिज्ञ का विनाश ?"

"नहीं !" सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक बार अपने गुरु की की ओर इस प्रकार देखा, मानो कहने में हिचकिचा रहे हों, फिर बोले, "उनका विनाश नहीं, उनके मन में हमारे प्रति जो विरोध है, उसका विनाश।"

"अर्थात् ?" कौटिल्य की भौंहें सिकुड़ गईं।

"अर्थात् उन्हें प्रसन्न करके अपने यहाँ कोई पद दे दिया जाए। तब उनकी अपार बुद्धि हमारा विरोध करने के स्थान पर हमारी रक्षा करने लगेगी।"

कौटिल्य ने धीरे से मुस्कराकर कहा, "सम्राट् यह चाहते हैं कि राक्षस को पहले की तरह ही मगध का महामात्य बना दिया जाए ! क्योंकि महामात्य के अतिरिक्त वह और कोई पद स्वीकार ही नहीं करेंगे।" वह पल-भर के लिए रुककर उदासी के साथ बोला, "ठीक ही है। राजा का चित्त दैव की तरह कब कैसा हो जाए, क्या पता। अब इस दीन ब्राह्मण की आवश्यकता ही क्या रह गई है सम्राट् को !"

सम्राट् चकित हो गए; बोले, "मुझे क्षमा करें, आर्य ! मैं तो स्वप्न में भी नहीं सोचता था कि आप ऐसा समझ बैठेंगे। चन्द्रगुप्त मरते समय भी यह नहीं भूल सकता कि भगवान् कौटिल्य ने ही उसे बनाया है।"

कौटिल्य हँस पड़ा; बोला, "नहीं, सम्राट् का सोचना उचित नहीं। किसी भी व्यक्ति को ऊँचा उठाकर यों ही कोई उस पर इतना बड़ा बोझ तो लाद नहीं सकता। मगध का साम्राज्य सँभालने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य का ही कन्धा चाहिए। मैं तो यों ही विनोद कर रहा था। कभी-कभी सोचता हूँ कि एक दिन यही मगध-सम्राट् मेरे नन्हे-से शिष्य थे, तब जी होता है कि थोड़ा हँस लूँ। वैसे मैं तुझ पर गर्व करता हूँ, वृषल !"

"आर्य की कृपा है।"

"तूने ठीक वही सोचा, जो मैं चाहता हूँ। वैसे भी मैंने मगध का महामात्य बनने के लिए यह सब नहीं किया है। मैं तो धरती पर एक ऐसा शासन चाहता हूँ, जिससे प्रजा को अधिक-से-अधिक सुख मिले। उसे जो चला सके, वही राजा है। कौन जाने, सम्भवतः शासन के इससे भी अच्छे मार्ग हों! पर मैं जो जानता हूँ, वही कर रहा हूँ।"

सम्राट् ने प्रणाम करके उठते हुए कहा, "मैं आर्य का स्वप्न साकार कर सका तो अपने को धन्य समझूँगा!"

"साकार हो रहा है! समुद्र से समुद्र तक, जम्बू खण्ड के इस छोर से उस छोर तक फैला हुआ एक साम्राज्य! इस पूरे क्षेत्र का एक भी कण राजा की आँख से छिपा न रहे, प्रजा के एक भी व्यक्ति पर अत्याचार न हो, यही मेरा स्वप्न है, वृषल! और तू उसे पूरा करेगा। तेरे प्रताप से, तेरे शौर्य से और तेरी बुद्धि से एक दिन ऐसा होकर रहेगा! मैं आज ही राक्षस को यहाँ आकर महामात्य-पद स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित करूँगा।"

कौटिल्य चला गया। चन्द्रगुप्त ने मन-ही-मन उस महापुरुष को प्रणाम किया।

किन्तु थोड़े ही दिन बाद संवाद मिला। राक्षस ने स्पष्ट शब्दों में उनका आमन्त्रण अस्वीकार कर दिया था। उनके मन में अब भी नन्द-कुल के प्रति अपार मोह था। उसका विनाश करने वालों से वह स्वर्ग भी नहीं लेना चाहते।

सुनकर सम्राट् भी निराश हुए और कौटिल्य भी, पर राक्षस की निष्ठा के कारण दोनों ही उन पर प्रसन्न हुए। कौटिल्य ने हसकर कहा. "राक्षस, तू महान् है! मैं समझ रहा हूँ, अभी तक नन्दों से मेरी शत्रुता का अन्त नहीं हुआ। तेरे मन में बैठे नन्दों

से लड़ने के लिए कौटिल्य को फिर से कुछ नीतियाँ खेलनी होंगी।"

सम्राट् को विश्वास हो गया। जब तक आर्य राक्षस आकर पद सँभाल नहीं लेंगे, तब तक आर्य चाणक्य चुप नहीं बैठेंगे।

कुछ दिन और बीते। सीमा-प्रान्त के शासक महाराज पर्वतक तथा उनके युवराज मलयकेतु अपनी पूरी सेना के साथ अब तक मगध में ही रुके थे। उनकी ओर से आधा राज्य बाँटने की माँग एकाध बार और भी आ चुकी थी, पर कौटिल्य बड़ी चतुराई से उन्हें रोके हुए था। वह लगातार ऐसी युक्ति खोज रहा था कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। मगध को आधा-आधा बाँट देने का अर्थ था—कौटिल्य का सपना ही टूट गया। और वह सब कुछ सहन कर सकता था, पर अपना सपना पूरा करने के लिए; तोड़ने के लिए नहीं। फिर भी पर्वतक तथा मलयकेतु को टाल देना सहज नहीं दीखता था।

तभी एक मार्ग मिल गया। गुप्तचरों से सूचना मिली कि आर्य राक्षस तपोवन से सीधे पर्वतक की राजधानी चले गए थे। उनके मन्त्री से बातें करके उन्होंने विश्वास दिला दिया है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त कभी आधा राज्य नहीं देंगे। यदि महाराज पर्वतक मेरी सहायता करें, तो मैं उन्हें मगध का पूरा ही राज्य दिला सकता हूँ।

मन्त्री ने राक्षस से प्रभावित होकर महाराज पर्वतक को पत्र लिखा है कि 'मैं वृद्ध हो गया हूँ। आप आर्य राक्षस को ही अपना महामात्य बना लें। उनकी सहायता से आपका तथा प्रजा का कल्याण ही होगा।'

महाराज पर्वतक से मिलकर राक्षस अब कौटिल्य और चन्द्रगुप्त के विरुद्ध नई योजना बना रहे थे।

सम्राट चन्द्रगुप्त ने निराश होकर कहा, "आर्य! लगता है,

आर्य राक्षस हमारा विरोध करने के लिए ही जीवित हैं।"

कौटिल्य हँसा ; बोला, "पर मैं तब तक सम्राट् की रक्षा करने के लिए जीवित रहूँगा, जब तक राक्षस ही यह भार नहीं सँभाल लेता। हमारे गुप्तचरों ने आज एक बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर दिया !"

"क्या ?"

"राक्षस ने तुम्हारी हत्या कराने के लिए एक विषकन्या भेजी थी। उसे हमारे गुप्तचरों ने…"

"हत्या !" सम्राट् उठ खड़े हुए; बोले, "मैं उस विषकन्या को देखना चाहता हूँ, आर्य !"

चाणक्य ने कहा, "वह तो कहीं और चली गई…!"

"कहीं और ? उसे बन्दी नहीं बनाया गया ?"

आज्ञा लेकर द्वारपाल ने एकाएक प्रवेश किया। बोला, "सम्राट् की जय हो ! एक चर दर्शन करना चाहता है !"

सम्राट् ने अनुमति दी। भीतर आते ही चर ने उन्हें प्रणाम करके कहा, "सेवक को प्राणदान मिले, देव ! महाप्रतापी मगध-सम्राट् के प्रिय बन्धु महाराज पर्वतक की हत्या हो गई !"

"कैसे ?" कौटिल्य ने चौंककर पूछा।

"उनके शरीर पर भयंकर विष के चिह्न दिखाई पड़े हैं !"

क्षण भर सोचने के बाद चाणक्य ने आज्ञा दी, "सम्राट् का रथ तैयार रखने की आज्ञा दे !"

चर के जाते ही सम्राट् ने तीखी दृष्टि से चाणक्य की ओर देखा; बोले, "विषकन्या इसी कारण बन्दी नहीं बनाई गई थी, आर्य ? आपने राक्षस के शस्त्र से उन्हीं का फैलाया हुआ जाल काट दिया ?"

चाणक्य ने सिर हिलाकर कहा, "पहले मैं तेरे दुस्साहस से डरता था, वृषल ! अब तेरी बुद्धि से भी डरता हूँ। तेरा अनुमान

सत्य है। पर याद रहे, महाराज पवतक की मृत्यु पर तुझे शोक का ही अभिनय करना है।"

उसी समय चाणक्य ने चारों ओर दो प्रकार के समाचार फैलवाने का प्रबन्ध किया।

महाराज पर्वतक की सेना में समाचार फैला कि कौटिल्य ने आधा राज्य बचाने के लोभ में स्वयं ही विषकन्या भेजकर पर्वतक की हत्या करा दी है। वह युवराज मलयकेतु तथा उनके मित्र राजाओं, राजकुमारों तथा बड़े-बड़े अधिकारियों की भी हत्या कराने का षड्यन्त्र रच रहा है।

यह समाचार पाते ही मलयकेतु तथा उसके मित्रों में आतंक छा गया। वह चुपचाप मित्रों और सेना सहित अचानक ही मगध छोड़कर चल पड़ा। भागुरायण, भद्रभट, पुरुषदत्त आदि कितने ही मित्र अपनी सेनाएँ लेकर उसके साथ चले गए।

दूसरी ओर सारे मगध में प्रचार किया गया कि राक्षस ने पर्वतक की हत्या करा दी है और अब वह मौर्य-सम्राट् की भी हत्या का उपाय कर रहा है।

नये सम्राट् की उदारता, वीरता तथा उसके स्नेह से प्रभावित प्रजा का बहुत बड़ा भाग राक्षस से घृणा करने लगा। मौर्य-सम्राट् के प्रति उन्हें और भी मोह हो गया।

२९

सारी चाल इस तरह उलट गई कि आर्य राक्षस चकित रह गए। वह जो कुछ भी करते हैं, उसका अर्थ उलट जाता है। कौटिल्य की चतुरता के कारण उनके कितने ही मित्र तथा योग्य गुप्तचर जान से हाथ धो चुके थे। धीरे-धीरे उनके मित्रों की संख्या कम होती जा रही थी। और अब तक उनका परिवार पाटलिपुत्र में ही फँसा पड़ा था। सिंह की माँद में कोई कब तक बचा रहेगा! पता नहीं कब उन पर विपत्ति टूट पड़े!

फिर भी आर्य राक्षस में अपार धैर्य था। कुछ भी हो जाए, सारा संसार पलट जाए, पर वह मगध पर ऐसे शासक को नहीं रहने देंगे, जो नन्द-वंश का नाश करके आ जमा है।

इस बार उन्होंने बल और बुद्धि दोनों को एक साथ जोड़कर आक्रमण करने की योजना बनाई। यदि चाणक्य की ढिठाई का लाभ उठाकर मौर्य-सम्राट् के मन में क्रोध भरा जा सके, तो दोनों में कलह हो सकता है। राक्षस ने कई ऐसे गुप्तचर बन्दीजन नियुक्त किए जो मगध की सभा में चन्द्रगुप्त का विरुद गाया

करते थे। उन्हें आज्ञा थी कि जब कभी चाणक्य से राजा जरा भी क्षुब्ध हो, उस समय ऐसी वन्दना गाओ कि राजा उत्तेजित हो जाए।

कौटिल्य तथा चन्द्रगुप्त के बीच भेद डालने के लिए और भी कितने ही उपाय उन्होंने रच डाले। फिर उन्होंने चन्द्रगुप्त की उन्नति से भयभीत तथा जलने वाले राजाओं को मिलाकर बहुत बड़ी सेना का संगठन किया। उनके प्रयत्न से कितने ही राजा, राजपुत्र तथा सेनापति कुमाराधिराज मलयकेतु का साथ देने के लिए तैयार हो गए।

इसी बीच एक दिन सहसा उनका मित्र कायस्थ शकटदास आ पहुँचा। उसे देखते ही आर्य राक्षस प्रसन्न हो गए। शकटदास से ही पता चला कि इन दिनों कौटिल्य सारे पाटलिपुत्र में आर्य राक्षस के मित्रों को खोज-खोजकर पकड़वा रहा है। मौर्य राजा भी उनके दोष-गुण की ओर ध्यान दिए बिना एक सिरे से सबको प्राणदण्ड की आज्ञा दे रहा है।

"चन्दनदास तो सकुशल है, शकट ?" राक्षस ने काँपते हुए हृदय को सँभालकर पूछा।

शकटदास की आँखों में पानी भर आया; बोला, "यह दुख-भरा समाचार देने से मैं बचना ही चाहता था, आर्य !"

"क्या हुआ उसे ?" राक्षस ने चौंककर पूछा, "कहो, शकट, कहो ! इस राक्षस ने इतने बड़े-बड़े दुख सहे हैं, एक और सही।"

शकट ने भरे गले से कहा, "उन पर राजा की ओर से बड़ा दबाव डाला गया, फिर भी उन्होंने आपके परिवार को सौंपने से इन्कार कर दिया। उनके घर पर आपका परिवार नहीं मिला। सेठ चन्दनदास से महान् कौन होगा ! प्राणदण्ड की आज्ञा होने पर भी उन्होंने आपके परिवार की रक्षा की है। मुझे भी बस, सूली पर चढ़ा भर देने की देर थी, पर सहसा ही दो व्यक्तियों ने

आक्रमण करके चाण्डालों को मार भगाया और मुझे मुक्त कर दिया। सेठ चन्दनदास अभी तक जीवित हैं, पर कब तक…"

राक्षस का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने धीरे से कहा, "सम्भवत: मेरे गुप्तचरों ने ही तुम्हारी रक्षा की होगी। यदि व चन्दनदास को भी बचा सके तो मैं मुँहमाँगा पुरस्कार दूँगा। और यदि मेरे पहुँचने से पहले तक चन्दनदास जीवित रहे, तो सूली पर उनकी जगह वह नीच मौर्य चढ़ेगा…और वह कुटिल चाणक्य…"

फिर और भी जल्दी-जल्दी तैयारी करके आर्य राक्षस ने मलयकेतु तथा अन्य मित्र राजाओं के साथ मगध की ओर अभियान कर दिया। समुद्र जैसी इस विशाल सुसंगठित सेना के सामने कौन टिकेगा ?

पाटलिपुत्र से कुछ दूर पहले ही सेना ने अन्तिम पड़ाव डाला। आक्रमण के लिए अवसर, व्यूह-रचना तथा सुरक्षा के प्रबन्ध के लिए पूरा उपाय अन्तिम रूप से करके ही धावा बोला जाएगा।

अपने पिता की हत्या के कारण मलयकेतु का हृदय जलता रहता था। आर्य राक्षस जैसा मित्र और मन्त्री पाकर वह विश्वास से भर गया। मौर्य के पास यदि चाणक्य है, तो मयलकेतु के पास राक्षस। उसके साथ ही मगध की अपार प्रजा, जिसके मन में अब भी अपने पुराने महामात्य के लिए अगाध प्रेम है।

सेना का अन्तिम रूप से संगठन लगभग पूरा हो चुका था। व्यूह-रचना के अभ्यास हो रहे थे। पाटलिपुत्र के एक-एक कण को महामात्य राक्षस से अधिक कौन जानता था ! उसी के अनुकूल सारी व्यवस्था की गई थी। सवेरे ही अपने मित्र राजाओं तथा सेनानायकों के साथ स्वयं कुमाराधिराज मलयकेतु सेना का निरीक्षण करने के लिए निकल पड़े थे। कुछ ही भाग देखकर वह विश्वास से भर गए। विजय निश्चित है। इस संगठित सेना का

सामना करने की शक्ति किसमें होगी ?

लौटते समय उन्हें सहसा सुखद संवाद मिला। पाटलिपुत्र में कलह हो गया है ! सम्राट् चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र में 'कौमुदी-महोत्सव' मनाने की आज्ञा दी थी, पर चाणक्य ने आक्रमण की सूचना पाकर राजा से बिना पूछे ही उत्सव रुकवा दिया था। इसी प्रसंग में विवाद बढ़ जाने के कारण मौर्य-सम्राट् ने कौटिल्य को महामात्य के पद से हटाकर उसके सारे अधिकार छीन लिए।

सुनते ही महामात्य राक्षस हर्ष से उछल पड़े ; बोले, "मेरी नीति सफल हो रही है, कुमाराधिराज !···मुझे आज्ञा दीजिए। कुछ आवश्यक कार्य करना है।"

साँझ को चारों ओर से अपने बलवान योद्धा मित्रों से घिरा बठा मलयकेतु अपनी निश्चित विजय के स्वप्न देख रहा था।

उसी समय शिविर के अध्यक्ष राजपुत्र भागुरायण ने सहसा भीतर आकर कहा, "कुमाराधिराज की जय हो ! एक विचित्र षड्यन्त्र का पता चला है।"

"षड्यन्त्र ? कैसा ? किसके विरुद्ध ?"

भागुरायण ने कहा, "अभी-अभी मैंने शिविर से बाहर जाने वाले एक गुप्तचर को पकड़ा है। पर वह सब कुछ आपके सामने ही कहने को तैयार है।"

"उसे तुरन्त लाओ !" मलयकेतु के माथे पर बल पड़ गए।

सैनिक गुप्तचर को ले आए। वह मलयकेतु के सामने भय से काँपते हुए बोला, "कुमाराधिराज के प्रताप से धरती डगमगा जाती है। मुझे प्राणदान मिले, मैं सेवक हूँ···"

"अरे ! सिद्धार्थक, तू ? यह तो महामात्य राक्षस का मित्र है, भागुरायण ! तू कहाँ जा रहा था, रे ?" मलयकेतु ने आश्चर्य से पूछा।

"पाटलिपुत्र !"

"किससे मिलने ?"

"मगध के मौर्य···" वह हिचकिचाकर रुक गया।

"किसकी आज्ञा से ?"

गुप्तचर डरकर सिमट गया।

राजकुमार भागुरायण ने जोर से कहा, "सच-सच कह !"

"महामात्य राक्षस मेरा वध कर देंगे !" सिद्धार्थक काँपकर बोला।

"कुमाराधिराज के होते महामात्य राक्षस तेरा क्या करेंगे ?"

सिद्धार्थक ने सिर नीचा करके धीरे से कहा, "सबके होते राक्षस ने विषकन्या भेजकर महाराज पर्वतेश्वर की हत्या कर दी थी, मैं तो "

"क्या ?" मलयकेतु चीख पड़ा, "पिताश्री की हत्या राक्षस ने की थी ?···ओह ! नीच राक्षस !"

भागुरायण ने तुरन्त मलयकेतु के सामने एक पत्र रखते हुए कहा, "इसके पास से यह पत्र मिला है, और साथ ही ये आभूषण !"

मलयकेतु ने आश्चर्य से कहा, "ये आभूषण तो मैंने ही उस नीच राक्षस को उपहार में दिए थे ! तू इन्हें कहाँ ले जा रहा था ?"

पत्र पढ़ा गया—

"···आपने मेरे विरोधी को पद से हटाकर अपना वचन पूरा किया। अब जिन मित्रों से सन्धि की बात हुई है, उनकी शर्तें भी पूरी करके उन्हें तुरन्त मिला लीजिए। उनमें से कुछ को हमारे शत्रु के राज्य का लालच है, कुछ को उसकी गज-सेना का। आप-से मिलते ही वे अभी हमारे जिस शत्रु के सहायक बने हैं, उसी का नाश कर देंगे। आपके भेजे तीनों आभूषण मिल गए। आभारी

हूँ। मेरी ओर से कुछ तुच्छ उपहार स्वीकार करें! सिद्धार्थक मेरा विश्वासपात्र मित्र है। उससे सन्देश सुन लीजिए···"

मलयकेतु ने दाँत पीसकर कहा, "इस पर राक्षस की मुद्रा भी अंकित है!"

भागुरायण ने ध्यान से देखकर कहा, "हाँ, वही मुद्रा है, जिसे आजकल आर्य राक्षस धारण किए रहते हैं।"

सिद्धार्थक को ठोकर मारकर मलयकेतु ने पूछा, "सन्देश क्या था?"

भय से सूखे गले से सिद्धार्थक ने बताया, "अमात्य राक्षस ने कहा था कि हमारे मित्र कुलूत के राजा चित्रवर्मा, मलय-नरेश सिंहनाद, काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष, सिन्धुराज सिन्धुसेन तथा पारसीक राजा मेघाक्ष से तो आपकी सन्धि हो ही चुकी है। इनमें से तीन को तो मलयकेतु के राज्य पर अधिकार पाने का लोभ है; सिन्धुसेन और मेघाक्ष उसकी गज-सेना चाहते हैं। जिस प्रकार आपने कौटिल्य को हटाकर वचन पूरा किया, उसी प्रकार इन मित्रों को भी···"

मलयकेतु गरज उठा, "तो ये नीच मेरे साथ ही शत्रुता कर रहे हैं! बुलाओ उस दुष्ट राक्षस को!"

भागुरायण सतर्क हो गया। बोला, "कुमाराधिराज, शान्त हों! राजनीति ऐसे ही चलती है। राक्षस ने अपना काम बनाने के लिए नीचता तो की है, पर आप इस समय नीति से काम लें। पहले मगध-साम्राज्य पर अधिकार हो जाए, तब चाहे जो करें।"

कुछ देर सोचकर मलयकेतु ने कहा, "तुम ठीक कहते हो। मैं तो इस दुष्ट का वध कर देता!···हूँ···इससे विपत्ति खड़ी हो सकती है। तब तो हमारी विजय असम्भव हो जाएगी।"

पर अमात्य राक्षस के भीतर आते ही वह क्रोध से बिफरकर

बोला, "नीचों को नीचता ही अच्छी लगती है। मैं यहाँ तुझे पूज्य बनाकर सिर पर रखता था, पर तुझे उस जाति-कुलहीन मौर्य के चरणों में रहना ही अच्छा लगता है।"

राक्षस कुछ देर भौंचक्के-से खड़े रहे, फिर बोले, "आज कुमाराधिराज को हो क्या गया है ?"

मलयकेतु ने पत्र उनके सामने फेंककर कहा, "यह पत्र देख कर समझ ले ? तूने हत्याएँ की हैं, पहले मेरे पिता की हत्या, और अब मेरी..."

"मैंने यह पत्र...पर यह तो शकटदास की ही लिखावट है, मुद्रा भी मेरी ही लगी है...यह सब कैसे हो गया ?"

"चुप रह! जैसा तू चाहता था, वैसा नहीं हुआ नीच ब्राह्मण, मैं बच गया। ये आभूषण तुझे मैंने इसीलिए दिए थे कि उन्हें मौर्य को उपहार में दे ? मेरे समक्ष आते समय तू क्या चन्द्रगुप्त के भेजे हुए गहने पहनकर आया है ? अरे सचमुच ! तूने तो मेरे पिता पर्वतक का ही आभूषण पहन रखा है, इसे ही क्या मौर्य ने उपहार में भेजा है ?"

"नहीं कुमार, सुनिए तो ! ये आभूषण तो एक व्यापारी मेरे योग्य ही कहकर बेच गया था...और आपके आभूषण मैंने उपहार में दे दिए थे..."

"हाँ, उपहार में, उन मित्रों को जो मेरा वध करें · झूठा ! यह शकटदास और अपनी मुद्रा भी क्या चाणक्य को उपहार में दे दी थी ?"

आर्य राक्षस सिर पकड़कर बैठ गए। कुछ समझ में नहीं आ रहा था—क्या से क्या हो गया ?

मलयकेतु ने क्रोध से कहा, "इसे तुरन्त मेरी आँखों के सामने से दूर कर दो ! मैं हत्यारा नहीं हूँ, नहीं तो अभी इसका वध कर देता। और सेनापति शिखरसेन को मेरी आज्ञा सुना दो कि उन

पाँचों राजाओं में से तीन हमारी धरती चाहते हैं न, उन्हें धरती खोद कर गाड़ दे और बाकी दोनों को गज-सेना से मोह है, उन्हें हाथियों से कुचलवा दे !"

शिविर से बाहर निकाल देने पर आर्य राक्षस अपमान से काले पड़ गए। उफ ! चाणक्य कितना चतुर है ! उसने एक-एक चाल को उलटकर स्वयं राक्षस को आहत कर दिया था। क्षण-भर पहले जिस राक्षस के एक-एक संकेत पर इतनी बड़ी सेना और मगध के भावी सम्राट् नाचते थे, वही अब भिखारियों की तरह खड़े हैं। उन पर छोटे-छोटे सैनिक हँस रहे हैं। उनकी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

उनकी इच्छा हुई कि चलें, तलवार लेकर शत्रुओं के बीच अकेले ही कूद पड़ें और जो भी कर सकें, करके प्राण दे दें !

छिः ! वह ग्लानि से भर गए। जब तक शत्रु जीवित बैठा है, तब तक वह ऐसा नहीं कर सकते। जब तक मगध के सिंहासन पर नीच मौर्य रहेगा, तब तक वह मरकर भी शान्ति नहीं पाएँगे।

पता नहीं चन्दनदास का क्या हुआ। सहसा उनका हृदय तेजी से धड़क उठा। विपत्ति में पड़े बच्चों की याद आई, पत्नी की याद आई और फिर चन्दनदास की मूर्ति आँखों के आगे नाचने लगी। बार-बार शंका से मन थरथरा उठता। लगता, जैसे कोई चन्दनदास को सूली पर चढ़ा रहा है। अब उसे बचा पाने का कोई उपाय नहीं।

प्यास और घुटन से तड़पकर आर्य राक्षस ने अपने गले पर हाथ फेरा और चुपचाप पाटलिपुत्र की ओर बढ़ चले।

कितने ही दिन भटकते-भटकाते, छिपते-छिपाते वह एक दिन बच-बचाकर पाटलिपुत्र में घुस ही गए। आँखें गीली हो आईं। एक दिन इसी पाटलिपुत्र में वह क्या थे ! उनके मित्रों की संख्या

अपार थी। यहाँ का एक-एक व्यक्ति उन्हें प्यार करता था। आज सब कुछ बदल गया है। उनके पता नहीं कितने मित्रों को केवल उनके प्रति प्रेम होने के कारण ही मार डाला गया; बरबाद कर दिया गया। वह अपने को ही कोसने लगे। आज तक वह शत्रु का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके; केवल मित्रों के नाश का ही कारण बनते रहे हैं। वह सचमुच राक्षस हैं--जैसा नाम, वैसा गुण!

पास से ही सैनिकों की एक टुकड़ी द्वार की ओर जा रही थी। उनकी आँखों से बचने के लिए राक्षस एक छोटे-से ओदनालय में घुस गए। कुछ व्यक्ति नीचे धरती पर ही बैठकर पासा खेल रहे थे। एक ओर दुबककर राक्षस भी वहीं बैठ रहे। किसी तरह चन्दनदास का पता चल जाता तो...

"अब आज ये सैनिक कहाँ जा रहे हैं?" एक ने पासा फेंकते हुए कहा।

ओदनालय के लँगड़े स्वामी ने कहा, "कौन जाने, कुछ पता चलता है! इस समय मगध के मौर्य-सम्राट् का सूर्य चमक रहा है, कुछ भी हो सकता है!"

"हाँ, भला कौन जानता था कि इतना बड़ा शत्रु यों ही नष्ट हो जाएगा। मलयकेतु की विशाल सेना की बात सुन-सुनकर तो डर के मारे छाती धड़कती थी। पर उसको जाने क्या सूझा कि राक्षस जैसे बुद्धिमान को एकाएक अपमानित करके निकाल दिया!"

राक्षस सतर्क हो गए। उन्होंने ठुड्डी घुटने पर टेककर चेहरा छिपा लिया।

लँगड़े स्वामी ने हँसकर कहा, "मौर्य-सम्राट् ने भी आर्य चाणक्य को पद से हटा दिया था न, उन्हीं की नकल कर रहा होगा। यह नहीं जानता कि भगवान् कौटिल्य की नीति देवता भी नहीं समझ सकते।"

इन बातों में शायद सबको आनन्द आ रहा था। पासा एक ओर रखकर अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों को सँवारते हुए दूसरे खिलाड़ी ने कहा, "मैं तो सचमुच महामात्य चाणक्य को देवता मानने लगा हूँ। सम्राट् जैसे प्रतापी व्यक्ति उनकी पूजा यों ही नहीं करते। भला सोचो, बिना किसी कारण के ही उस मलयकेतु को क्या हुआ था कि पाँच-पाँच मित्र राजाओं को एकाएक मरवा डाला?"

उसने कुछ झुककर भेद-भरे स्वर में कहा, "मैं कुछ जानता हूँ। बताऊँ? मलयकेतु की सनक से डरकर सभी मित्र राजा अपनी-अपनी सेना सँभालकर भाग खड़े हुए। अब देखो कि पर्वतक के मरने पर यहाँ से भागते समय मलयकेतु के साथ राजकुमार भागुरायण, राजा बलदत्त, हिंगुरात, भद्रभट, राजसेन आदि राजा उसके मित्र बनकर साथ चले गए थे। उन्होंने ही पता नहीं कैसे उपाय रचकर पहले तो राक्षस से मलयकेतु का झगड़ा करा दिया। जब राक्षस शिविर से निकाल दिए गए तो मित्र बने हुए उन्हीं राजाओं ने मलयकेतु को पकड़कर बाँध लिया। वे सब-के-सब मौर्य राजा के मित्र थे। काम साधने के लिए कितनी बड़ी तपस्या की उन्होंने!"

"की भी किसके लिए! जिसने एक दिन यवनराज सिकन्दर की सेना के बीच खड़े होकर उसे डरपोक कह दिया था। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे साहसी ही संसार में पूजनीय हैं। देखा नहीं, अवसर पाते ही स्वयं उन्होंने कितनी कुशलता से भगवान् कौटिल्य के साथ सेना लेकर मलयकेतु की सेना को घेर लिया और देखते-ही-देखते उसे परास्त कर दिया!"

सहसा राक्षस उठ खड़े हुए। जिस मलयकेतु को वह इतना स्नेह दे चुके थे, उसकी यह दशा सुनकर वह सह नहीं पा रहे थे। चलने को ही हुए कि कहीं से नगाड़ा बजने का विचित्र स्वर सुनाई पड़ा।

लँगड़े ने कहा, "लो, देखो! यह भी कैसा महापुरुष है! अपने मित्र राक्षस के परिवार के कारण प्राण तक दे रहा है। कौन सोचता था कि इतने बड़े लक्ष्मीपुत्र चन्दनदास को सूली लगेगी!"

"चन्दन !" राक्षस फुसफुसा उठे। लगा कि भयानक तनाव से उनकी एक-एक शिरा फट जाएगी। वह तेजी से श्मशान की ओर भागे।

बधिक नगाड़ा पीटकर अन्तिम बार घोषणा कर चुके थे, "सुने ! सुने ! प्रजा सुने ! महापराक्रमी मगध-सम्राट् की आज्ञा का उल्लंघन करके, अमात्य राक्षस के परिवार को शरण देने वाला, हत्या के षड्यन्त्रों में भाग लेने वाला राजद्रोही चन्दनदास···"

भीड़ चीरकर राक्षस इधर-उधर टकराते, ठोकर खाते सहसा बीच में जा खड़े हुए और चिल्लाकर बोले, "नहीं, नहीं, नहीं ! चन्दनदास को छोड़ दो···मैं राक्षस हूँ···मुझे ले चलो अपने राजा के पास, मुझे चढ़ा दो सूली पर··"

चन्दनदास ने झपटकर राक्षस को गले से लगाते हुए कहा, "यह क्या किया, आर्य ! मित्र के लिए प्राण देने के सुख से बड़ा सुख और क्या होता ! तुमने उसे भी मुझसे छीन लिया···"

राक्षस ने गीली आँखों से उन्हें देखते हुए कहा, "आज तक राक्षस मित्रों की पीड़ा का ही कारण तो बना रहा है, चन्दन ! सुख कब दिया !"

सैनिक उन्हें घेरकर राजसभा की ओर ले चले।

११

चर की बात पर कौटिल्य को भी सहसा विश्वास न हुआ । असम्भव ! जिस राक्षस के मित्र सेठ चन्दनदास तथा कायस्थ शकटदास जैसे महान् व्यक्ति हों और जिस राक्षस की बुद्धि बृहस्पति के समान विलक्षण हो, वह भला कभी आत्मसमर्पण कर सकता है ! उन्होंने चर की ओर सन्देहभरी दृष्टि से देखते हुए पूछा, "तूने अपनी आँखों से देखा है ?"

चर को आश्चर्य हुआ । उसने घुटनों के बल बैठकर नम्रता से कहा, "आर्य की आज्ञा होते ही उन्हें आपके सामने उपस्थित किया जा सकता है ।"

कौटिल्य बोल नहीं पाया । हाथ से उसे जाने का संकेत कर-के वह स्तब्ध बैठा रहा । अब भी लगता था, जैसे वह स्वप्न देख रहा हो । मगध के सम्राट् को उसने सबके देखते-देखते नष्ट कर दिया था । चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ उसने बड़े-बड़े शत्रुओं को धूल चटा दी और मगध-साम्राज्य पर अधिकार जमा लिया था । पर राक्षस को वह सचमुच वश में कर सकेगा, इसमें उसे भी

सन्देह था ।

इतने दिनों के अथक प्रयास के बाद स्वयं कौटिल्य को ही यह सब असम्भव लगने लगा था । उसके प्रिय मित्र तथा सहपाठी विष्णु शर्मा जैसे गुप्तचर राक्षस के विश्वासपात्र सेवक बनकर बैठे थे । उसकी एक-एक गतिविधि पर चाणक्य की दृष्टि थी । वह जिस समय भी चाहता, राक्षस का वध करा सकता था । पर यह कौटिल्य की हार होती । सम्राट् के सामने उसने प्रतिज्ञा की थी कि राक्षस को उनका अनुचर बनाकर ही रहेगा । पर राक्षस ने उनके महासचिव बनने के निमन्त्रण को भी ठोकर मार दी थी । अपने परिवार को छोड़कर वह शत्रुओं से बदला लेने के लिए कहाँ-कहाँ भटकता फिरा ! वही राक्षस आज आत्मसमर्पण कैसे कर देगा !

बाहर से जयजयकार सुनाई पड़ा, "राजनीति को अपने इंगित पर नचाने वाले, नन्द-कुल का नाश करके मगध की कुल-लक्ष्मी को प्रतापी मौर्य-सम्राट् के हाथों में सौंपने वाले भगवान कौटिल्य की जय हो !"

उसके प्रतिद्वन्द्वी राक्षस को घेरकर सैनिक भीतर आए। कौटिल्य ने दूर से ही राक्षस के प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखा और उठकर कई पग आगे बढ़ते हुए बोला, "मैं क्या कर सकता हूँ, यह तो नन्दों का दुर्भाग्य था···महामात्य राक्षस का स्वागत है..."

आर्य राक्षस स्तब्ध खड़े उसकी ओर देखते ही रह गए ।

कौटिल्य ने दो पग और आगे बढ़कर मुस्कराते हुए कहा, "आर्य राक्षस को विष्णुगुप्त चाणक्य का प्रणाम स्वीकार हो !"

राक्षस ने कहा, "आपका प्रणाम स्वीकार करने की योग्यता मुझमें कहाँ ? योग्य तो आर्य चाणक्य हैं, जिनके कौशल से मेरे शकटदास जैसे उदार, महान् मित्र भी मुझसे विश्वासघात कर

बैठे…"

"नहीं-नहीं ! शकटदास और चन्दनदास जैसे मित्रों के कारण तो आप धन्य हैं ! शकटदास से तो मैंने छल करके वह पत्र यहीं लिखा लिया था, उसे बन्दी बनाने से बहुत पहले ही, आर्य ! अवसर आने पर उसका उपयोग किया गया। उसमें कहीं कोई नाम तो है नहीं, इसी कारण उसे लिखते समय शकटदास कुछ समझ नहीं पाया था। फिर मैंने ही उसे गुप्तचरों द्वारा चाण्डालों से छुड़वाकर आपके पास भेज दिया, जिससे वह पत्र पढ़कर मलयकेतु यही समझे कि उसे आप ही मौर्य-सम्राट् के नाम लिखवाकर सिद्धार्थक के हाथों पाटलिपुत्र भेज रहे हैं।"

"आह ! मित्र शकट पर अविश्वास करके मैंने कितना पाप किया ! पर मेरी वह मुद्रा…वह आपको कहाँ से मिली थी, आर्य चाणक्य ? उस मुद्रा ने ही मेरा भाग्य नष्ट कर दिया।"

हँसकर चाणक्य ने कहा, "उसी मुद्रा के कारण तो आज हमें आपके दर्शन का सौभाग्य मिला। आपका सेवक बनकर सिद्धार्थक मेरा ही काम कर रहा था। वह मुद्रा सेठ चन्दनदास के द्वार पर पड़ी मिली थी। उसी से मुझे पता चला कि आपका परिवार सेठ के यहाँ छिपा है। वह मुद्रा मैंने पत्र पर अंकित करके सिद्धार्थक द्वारा फिर आपके पास ही पहुँचा दी, जिससे मलयकेतु को पूरा विश्वास हो जाए कि आपकी आज्ञा से ही शकटदास ने वह पत्र लिखा है और आपकी मुद्रा भी लगी हुई है !"

राक्षस ने खिन्न होकर कहा, "मेरा दुर्भाग्य !"

"जो आपको दुर्भाग्य लगता है, वह हमारा सौभाग्य है, आर्य ! इस सौभाग्य के लिए तो मुझे सम्राट् से दण्ड भी भुगतना पड़ा। सम्राट् के साथ हमारे कलह के नाटक से मूर्ख मलयकेतु पूरी तरह समझ बैठा कि मुझे निकलवाकर आप मगध का महामात्य बनने के लालच में उसी का नाश कराना चाहते हैं !"

राक्षस ने प्रशंसा-भरे स्वर में कहा, "ऐसे महान् कूटनीतिज्ञ का दर्शन हमारे लिए सौभाग्य है !"

"जाने दीजिए," कौटिल्य हँस पड़ा, "वह देखिए, स्वयं सम्राट् भी आपका दर्शन करने के लिए आ पहुँचे। आपके प्रति विनम्रता प्रकट करने के लिए उन्होंने अपनी जयजयकार भी नहीं होने दी। वृषल, पूजनीय महामात्य राक्षस को प्रणाम कर !"

सम्राट् ने झुककर वन्दना की।

राक्षस ने धीरे से हँसकर कहा, "आपका कल्याण हो ! विजय तो हुई ही, और क्या कहूँ !"

सम्राट् बोले, "विजय मेरी कैसी, आर्य ! न धनुष ही उठाने का अवसर मिला, न अपनी सेना के साथ हाथी पर चढ़कर अभियान करने का अवसर ही पा सका। आर्य चाणक्य ने ऐसे ही आपका दर्शन करा दिया। पर जिस राजा के पास भगवान् कौटिल्य तथा आप जैसे नीतिज्ञ महामात्य हों, वह चाहे शस्त्र उठाए, चाहे नहीं, उसकी विजय-ही-विजय है।"

आर्य राक्षस ने कहा, "नहीं, सम्राट् ! ऐसा नहीं है। राजा मूढ़ हो तो बड़े-बड़े नीतिज्ञ भी व्यर्थ हो जाते हैं। मैंने ही एक दिन नन्द-सम्राट् के साथ होने पर पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन कर दिया था। विजय-पर-विजय प्राप्त की थी, पर मैं ही तो हूँ कि उतनी विशाल सेना लेकर भी मलयकेतु को राजा नहीं बना सका। आर्य चाणक्य की कूटनीति विलक्षण है, पर उसे सफल करने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य जैसा सम्राट् ही चाहिए। विजय-मुकुट सँभालने वाला मस्तक सबके पास नहीं होता।"

"तो अब इस विजय-मुकुट की रक्षा आर्य राक्षस ही कर सकते हैं !" कौटिल्य ने राक्षस की ओर देखते हुए कहा, "सम्राट् की यही इच्छा है।"

"मैं चकित हूँ !" आर्य राक्षस हाथ मलते हुए बोले, "मेरे लिए आर्य चाणक्य तथा सम्राट् ने महामात्य शब्द कहा है, मैं भला इस योग्य कहाँ ? अनजाने ही मुझे···"

"आर्य राक्षस···सुना है, आप सेठ चन्दनदास की प्राणरक्षा करना चाहते हैं।" चाणक्य की लाल आँखों में जाने क्या कौंध उठा। उसका स्वर रूखा और भारी हो गया।

"उसी के लिए तो मैंने आत्मसमर्पण किया है, आर्य ! अपने लिए इतने महान् मित्रों का नाश कराके मुझे जीवित रहने का जरा भी लोभ नहीं है।"

"चन्दनदास की रक्षा का एक ही उपाय है, आर्य··"

"आत्मसमर्पण ! वह तो मैंने कर दिया···"

"नहीं··" सम्राट् ने अपने हाथ से खंग बढ़ाते हुए कहा, "मगध के महासचिव के रूप में आर्य यह राज-चिह्न धारण करें "

आर्य राक्षस दोनों हाथों को जकड़कर कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले, "मेरे मन में नन्द-सम्राट् के प्रति अपार मोह था, मुझ पर सम्राट् विश्वास कर सकेंगे !"

सम्राट् ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ ! हीरा राजा के पास भी रहता है और लम्पट नीच चोर के पास भी। वह जहाँ रहता है, उसी का बनकर रहता है। इसमें हीरे का क्या दोष ? उसका मूल्य घट तो नहीं जाता, आर्य !"

कुछ देर सिर झुकाकर सोचते रहने के बाद आर्य राक्षस बोले, "मैं निरुत्तर हो गया हूँ। फिर भी, यदि मैं जीवित न रहता सम्राट्, तब ? मान लीजिए इस संघर्ष में मेरी मृत्यु ही हो जाती···"

"नहीं !" सम्राट् ने मुस्कराकर कहा, "हम आपको आत्म-हत्या भी नहीं करने देते। आपके ऊपर सदा हमारी आँख लगी

रहती थी। हमारे चर एक ओर तो आपका पतन कराने पर लगे रहते थे, दूसरी ओर वे आपकी रक्षा भी करते थे···"

"रक्षा ?"

"हाँ ! मलयकेतु उत्तेजित होकर आपका वध करने को ही तैयार हो गया था, उस समय विद्रोह खड़ा हो जाने का डर दिखाकर हमारे मित्र राजपुत्र भागुरायण ने आपकी रक्षा की थी। संकट में हर समय हमारे गुप्तचर आर्य के साथ रहे हैं। और सेठ चन्दनदास को यह सारा संकट इसीलिए सहना पड़ रहा है कि उनकी रक्षा करने के लिए आप जसा उदार, स्नेही व्यक्ति अवश्य सामने आएगा !"

"और आज यदि मैं आत्मसमर्पण न कर देता, तो मित्र चन्दनदास को सूली पर चढ़ा ही दिया जाता···" उत्तेजना के कारण राक्षस हाँफने लगे।

"नहीं !" कौटिल्य ने कहा, "हम जानते थे कि आर्य राक्षस पाटलिपुत्र में ही हैं। इसी कारण आज चन्दनदास को वधभूमि पर ले जाया गया। यदि आप न आते, तो सेठ की रक्षा का उपाय निश्चित था। राजा की आज्ञा से आज प्राणदण्ड रोक दिया जाता···"

आर्य राक्षस अवाक् होकर उनकी ओर ताकते रह गए।

कौटिल्य ने आँखें फेरकर कहा, "पर एक बात निश्चित है, आर्य ! यदि आप राज-चिह्न धारण नहीं करते, तो सेठ चन्दनदास की प्राण-रक्षा अब नहीं होगी। वधिक अब तक उन्हें बाँधकर श्मशान में ही सम्राट् की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं···"

राक्षस ने खंग थामकर कहा, "मैं स्वीकार करता हूँ···मगध-सम्राट् की जय हो···"

कौटिल्य ने बढ़कर उन्हें छाती से लगा लिया। बोला, "आज से मैं निश्चिन्त हुआ। मगध की राजलक्ष्मी अब मौर्यों के यहाँ

स्थिर हो गई···"

"जय हो देव !" एक चर ने प्रवेश करके कहा, "राजकुमार भागुरायण ने संवाद भेजा है। बन्दी मलयकेतु पाटलिपुत्र लाए गए हैं। उनके सम्बन्ध में क्या आज्ञा है···"

"आज्ञा देंगे अब मगध के महामात्य राक्षस···" कौटिल्य ने उनकी ओर संकेत किया।

राक्षस ने धीरे से कहा, "एक दिन ऐसा भी था, जब कुमार मलय को मेरा स्नेह मिल चुका है। उनको दण्ड देने की बात मैं अब भी नहीं सह पाऊँगा···"

सम्राट् ने कौटिल्य की ओर देखा। आँखों-ही-आँखों में बातें हुईं। कौटिल्य ने कहा, "मगध के महामात्य की पहली ही माँग ठुकराई नहीं जा सकती। चर, राजपुत्र भागुरायण को सम्राट् की आज्ञा दे कि कुमार मलयकेतु को मुक्त कर दें और स्वयं जाकर उन्हें राजसिंहासन पर बैठाकर लौट आएँ।"

चर चला गया।

कौटिल्य ने कहा, "वृषल, मैं और क्या करूँ तेरे लिए ?"

सम्राट् ने उसके चरण छूकर कहा, "आर्य ने मेरे लिए शेष ही क्या छोड़ा है ? बहुत सोचकर भी नहीं समझ पाता कि मेरे पास क्या कम है ?"

"तो कल्याण हो···मुझे अवकाश दे। महामात्य राक्षस सब कुछ सँभालेंगे···"

"आर्य !" मौर्य-सम्राट् का कण्ठ रुँध-सा गया।

"मैं जब तक जीवित हूँ, आर्य राक्षस और तुम मुझे अपने साथ ही खड़ा पाओगे।" कौटिल्य ने हाथ उठाकर कहा, "मुझसे सुखी कौन होगा, जिसका स्वप्न पूरा करने के लिए प्रतापी मौर्य-सम्राट् हों, आर्य राक्षस जैसे महामात्य हों···बस, इतना याद दिला देना चाहता हूँ···समुद्र से समुद्र तक, जम्बू खण्ड के

इस छोर से उस छोर तक···हिमालय के चरणों को छूता हुआ एक महान् शासन, जिसमें कोई भी दुखी न हो, कोई भी पीड़ित न हो···"

सम्राट् ने खड्ग छूकर कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, ऐसा ही होगा। महामात्य राक्षस, हमारी सेना का संगठन नए रूप में किया जाए। मैं स्वयं उसे देखूँगा। उत्तर-पश्चिम की सीमा पर यवनों का आतंक इस बीच फिर से छा गया है। पहले उससे धरती को मुक्त करना होगा!"

कौटिल्य ने हँसकर कहा, "देवी मुरा ने सचमुच पृथ्वी को पहला वास्तविक सम्राट् दिया है। कल्याण हो वृषल · महामात्य राक्षस के साथ तेरी कीर्ति अमर हो · "

वह धीरे-धीरे सभाभवन से बाहर निकल गया।

१३

मगध जैसे शक्तिशाली साम्राज्य में वर्षों से मची हलचल के कारण सारे भरत-खण्ड की राजनीति अस्थिर हो गई थी। कहाँ, कब, क्या हो जाएगा, कुछ पता नहीं चलता था।

यवन दिग्विजेता सिकन्दर उतनी कम उम्र में ही विश्व-विजय का सपना मन में लिए-लिए बाबुल में मर गया। मालवी योद्धा के गदाघात ने उसके सपने चूर-चूर कर दिए थे।

सिकन्दर के मरते ही उसके उत्तराधिकारियों में होड़ लग गई। उसके प्रमुख सैन्याधिकारी राज्य के लोभ में आपस में ही लड़ पड़े। ऐण्टीगोनस, सेल्युकस आदि योद्धा सेनापति काफी दिनों तक उसी ओर भिड़े रहे। अन्त में सेल्युकस का पलड़ा भारी रहा। बहुत बड़ा भाग उसी के अधिकार में आ गया।

भारत उसके लिए चुनौती बन गया था। सिकन्दर के आँख फेरते ही यहाँ की प्रजा ने अपने कन्धे पर पड़ा यवन दासता का जुआ उतार फेंका था। इतना ही नहीं, उसने फिलिप जैसे क्षत्रप को भी मार डाला था।

सेल्युकस के भीतर आग दहक रही थी। वह फिर से सेना लेकर इस ओर टूट पड़ा। थोड़े ही दिन पहले उतना गहरा आघात झेलकर छोटे-छोटे राज्य अपने को सँभाल भी न पाए थे कि यह दूसरा आक्रमण फिर उन्हें आसानी से ही तोड़ने लगा।

अपनी सहज विजयों के कारण सेल्युकस का आत्मविश्वास बढ़ गया। अपने स्वामी यवनराज सिकन्दर के विश्वविजय का स्वप्न उसकी आँखों में उतर आया। उसने अपने नाम के साथ 'निकेटर' की उपाधि जोड़ ली—'सेल्युकस निकेटर' अर्थात् विजेता सेल्युकस।

मगध में शासन के उलट-फेर की सूचना पाकर वह चकित भी हुआ, प्रसन्न भी। एक दिन उसके सामने ही यवनराज का अपमान करके सारी सेना की आँखों में धूल झोंककर निकल जानेवाला वही भारतीय युवक सांड्राकोट्टस (चन्द्रगुप्त) इतने शक्तिशाली मगध-सम्राट् की सेना को पछाड़कर राजा बन बैठा!

पर उसे खुशी भी कम नहीं हुई। जिस मगध की असंख्य सेना के भय से यवनराज सिकन्दर की सेना पीछे लौट गई थी, वह अब निर्बल हो चुका है। उसे जीतना आसान होगा। उसने अपने लक्ष्य की घोषणा कर दी, "इस बार भारत का हृदय मगध हमारे अधिकार में आकर रहेगा। और चन्द्रगुप्त ह… ह…ह…चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सम्राट् के रूप में हमारे कारावास में रहकर हमारी शोभा बढ़ाएगा!"

सेल्युकस निकेटर ने अभी से अपने सेनापतियों को आज्ञा दे दी, "युद्ध में, राजभवन में—जहाँ भी चन्द्रगुप्त मिले, उसे जीवित ही पकड़ा जाएगा।"

साँझ को सेल्युकस ने अपनी सुन्दरी पुत्री हेलेन को सहसा बताया, "मैं तेरे लिए एक नया पशु लाऊँगा, हेलेन। तेरी ही नहीं, सारे संसार की पशुशाला में वैसा एक भी नहीं है।"

उत्सुक होकर बड़ी-बड़ी आँखें झपकाती हुई हेलेन बोली, "कौन-सा पशु है ? क्या कहते हैं उसे ?"

"चन्द्रगुप्त !"

हेलेन चकरा उठी और विजेता ठहाका मारकर हँस पड़ा।

"चन्द्रगुप्त ? वही ··चन्द्रगुप्त जो आजकल···"

सिर हिलाकर विजेता ने कहा, "हाँ, राजपुत्री, वही चन्द्रगुप्त। वही दुस्साहसी युवक, जिसने यवन-सम्राट् का अपमान किया था। तू उसे देखना चाहती है न ? लाऊँगा। आजकल वह मूर्ख सैनिक यहाँ के सबसे बड़े साम्राज्य का अधिपति बन बैठा है।"

और एक बार फिर उसकी हँसी से शिविर गूँज उठा···

पर उधर पाटलिपुत्र में तीन व्यक्ति बैठकर भारत का भविष्य रच रहे थे।

एक ओर बैठा था भारत का सबसे पराक्रमी और कुशल सेनापति, साथ ही, मगध-सम्राट् चन्द्रगुप्त। इस समय उसके शरीर पर केवल एक रेशमी वस्त्र था। उसका चट्टान जैसा शरीर खुला हुआ था। वह धरती पर पट लेटा था। दो बलिष्ठ दास चमकीली काली लकड़ी के बेलन से उसके कन्धों और बाँहों का मर्दन कर रहे थे।

उसके एकदम निकट गोरे रंग का ऊँचा, पूरा, सुन्दर प्रौढ़ बैठा था, जिसे अपने प्राणों से भी बढ़कर मगध प्रिय था—महामात्य राक्षस। और सामने ही एकदम उलटे रंग-रूपवाला कौटिल्य बैठा था।

"भगवान् कौटिल्य की युक्ति मैंने बता दी है।" राक्षस ने कहा, "अब सम्राट् की जो आज्ञा हो !"

चन्द्रगुप्त हँस पड़ा, "और महामात्य राक्षस कहाँ रह गए ?"

राक्षस बोले, "जहाँ होना चाहिए। हर युद्ध में राक्षस सेना

में सबसे आगे रहता है···इस बार भी···"

"नहीं-नहीं, महामात्य मेरा ही अधिकार छीन रहे हैं !" चन्द्रगुप्त दाईं भुजा उठाकर सहसा चिल्ला पड़ा। उसका मर्दन-कर्ता दास उलटकर गिर पड़ा।

चाणक्य हँस पड़ा। बोला, "नीति का निर्णय करने का अधिकार महामात्य राक्षस को ही है, वृषल ! तू तो जैसे धरती उलट रहा है !"

दोनों दासों को हटाकर चन्द्रगुप्त उठ बैठा। उसके मांसल कन्धे फड़क उठे। बोला, "नीनि के दो-दो आचार्य मिलकर मुझ सैनिक को लूट रहे हैं। नहीं-नहीं, यह अत्याचार नहीं चलेगा !"

"वृषल !" चाणक्य दासों की ओर देखकर मुस्कराया, "अच्छा, पहले तू ही बता, तू तो सेनापति है न !"

"हाँ, अब ठीक है ! मैंने चरों से सुना है कि यवनों की राजकुमारी हेलेन मुझे देखना चाहती है···मैं सम्राट् हूँ, मेरा कर्तव्य है कि अतिथि की इच्छा पूरी करूँ !"

"सम्राट् !" राक्षस कुछ चकित हुए।

"हाँ, यह अपने पक्ष का तर्क दे रहा हूँ। अतिथि की इच्छा पूरी करने के लिए मुझे सबसे आगे रहना पड़ेगा।"

महामात्य राक्षस ने कहा, "देव का तर्क मैं कैसे काट सकता हूँ ? आचार्य कौटिल्य रक्षा करें मेरी।"

"सारे मगध की रक्षा करने वाले महामात्य की रक्षा मैं करूँ ?" कौटिल्य हँस पड़ा। "मैं तो इतना ही कह सकता हूँ, महामात्य, कि वृषल बचपन से ही हठी है ! हाँ, एक नई चिन्ता हो रही है !"

"मेरे रहते चिन्ता ?" चन्द्रगुप्त बोला।

"हाँ, तू ही तो चिन्ता का कारण है, वृषल ! यदि अतिथि की यह इच्छा जीवन-भर की इच्छा बन गई, तो ?"

चन्द्रगुप्त ने लज्जित होकर मुँह फेर लिया। राक्षस का हृदय भर आया । चाणक्य को केवल अंगार ही समझा जाता है, कौन जान सकता है कि उसके मन के ज्वालामुखी के बीचोबीच अमृत का एक सरोवर भी भरा है ! वह बोले, "तब इस समस्या का हल भी स्वयं आचार्य ही खोज लें ।"

घुटा हुआ सिर सहलाते हुए चाणक्य ने कहा, "अब इस ब्राह्मण से आप लोगों ने सब कुछ छीन लिया है, केवल इतना ही तो हाथ में रह गया है । यवन राजकन्या का विवाह मगध-सम्राट से करा दूँ ! एक भव्य राजभवन बनवाने की आज्ञा दे दीजिए, महामात्य ! यह भी सही ।"

"पहले विवाह होगा या युद्ध ?" सम्राट् ने पूछा ।

"नहीं, क्षत्रियों की परम्परा के अनुसार पहले युद्ध, फिर विवाह !" चाणक्य उठ खड़ा हुआ । फिर बोला, "मेरी एक-एक प्रतिज्ञा पूरी कर वृषल, पहले यवनों से भरत-खण्ड की धरती को मुक्त कर ··· एक छोर से दूसरे छोर तक ··· समुद्र से समुद्र तक फैला एक राज्य दे, फिर···" वह सहसा चला गया ।

उसे प्रणाम करके सम्राट् ने राक्षस से पूछा, "आर्य, सेना का संगठन तो हो ही चुका है ?"

"देव की कृपा से यवन युद्ध-कौशल भी हमारी सेना को वरदान की तरह मिल गया है ।"

"तो अभियान की तैयारी की जाए !"

"अभियान ? यवनों से युद्ध उधर ही होगा ?"

"हाँ, सीमा के जितने निकट हम उन्हें पछाड़ सकें, उतनी ही दूर तक धरती पर हमारा अधिकार होगा । फिर यवनों के साथ युद्ध की नीति और ही रखनी पड़ेगी ।"

राक्षस ने कहा, "उचित ही होगा, देव ! उनसे लड़ने के लिए गढ़ के बाहर निकलना ही उचित है । उनका घेरा भयंकर होता

है। गढ़ में बैठ रहना चूहे की तरह बिल में फँस जाना होगा।"

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने कहा, "लगता है, यवन रण-कौशल का अकेला जानकार होने का दम्भ मुझे छोड़ना पड़ेगा। हमारे महामात्य कम पटु नहीं हैं।"

राक्षस ने अभिवादन करते हुए कहा, "इस विषय में मैं भी सम्राट् का शिष्य बना रहा हूँ। मुझे आज्ञा है ?"

अनुमति पाकर राक्षस ने खड़े होते हुए कहा, "इस अभियान से उत्तर-पश्चिम की प्रजा अपने उदार सम्राट् का दर्शन करेगी।"

"हाँ, जिनके बीच मैं भुने जौ चबाकर संघर्ष करता रहा हूँ, उन्हें देखने का बड़ा मोह होता है !" सहसा जैसे कुछ याद आ गया। सम्राट् ने कहा, "आर्य ! तक्षशिला के ओदनालय से वह दासी आ गई, विजया ?"

"वह तो एक मास पहले ही आ गई थी, देव !"

"उफ् ! मुझे बताया भी नहीं ? उसे प्रस्तुत किया जाए।"

थोड़ी ही देर बाद विजया ने आकर प्रणाम किया। सम्राट् ने मुस्कराकर दाएँ हाथ की सबसे छोटी अँगुली फैला दी।

विजया आँखें झुकाकर हँस पड़ी। फिर बोली, "ऐसे नहीं, इस तरह !" उसने पूरी हथेली फैला दी।

अपने गले का हार उतारकर उसके हाथों पर रखते हुए सम्राट् बोले, "उस रोज तूने तिलोदक दिया था न ?"

विजया हार माथे से लगाकर सम्राट् के चरणों पर रखती हुई बोली, "सम्राट् क्या अतिथि से मूल्य लेना ठीक समझते हैं ?"

चन्द्रगुप्त ठहाका मारकर हँस पड़ा। बोला, "नहीं-नहीं, यह मूल्य नहीं विजया, मेरा उपहार समझ।"

कुछ देर बाद उन्होंने पूछा, "तू सुखी तो है ?"

विजया ने कुछ ढिठाई से सम्राट् की ओर देखते हुए कहा, "क्या बताऊँ ? राजा कभी किसी का विश्वास नहीं करता !"

चन्द्रगुप्त ने कहा, "अपना तो करता है। अच्छा, तू मेरी प्रमुख परिचारिका बनकर सेना के साथ चलेगी। तेरे हाथों का शालि भात खाकर तेरे सुख की ही खोज करता रहूँगा ! जा !"

विजया हँसती हुई चली गई। चन्द्रगुप्त उसे देखता ही रह गया। उस रोज बल से इसने रक्षा की थी, उसका मूल्य क्या कभी चुकाया जा सकता है ?

एक नहीं, असंख्य 'विजया' और कितने ही 'जीव' जिस व्यक्ति के लिए प्राण हथेली पर लिए खड़े हों, वह असफल कैसे होता !

रणक्षेत्र में यवन योद्धाओं को लेकर खड़े सेल्युकस ने सोचा था कि एक दिन सिकन्दर ने जिस तरह महाराज पुरु को पछाड़ा था, उसी प्रकार वह मगध की सेना और दुस्साहसी मौर्य-सैनिक को पराजित कर देगा।

पर उसी की तरह उसकी सारी सेना भौंचक्की रह गई।

सबसे पहले पहाड़ जैसे ऊँचे हाथी पर विराटकाय देवता की तरह खड़ा मगध-सम्राट् युद्धक्षेत्र में आया। कुछ क्षणों तक वह स्थिर खड़ा रहा। हेलेन ने रथ पर बैठे अपने पिता को झकझोर कर कहा, "जैसे स्वयं देवता जुपिटर उतर आया हो, देखा !"

सेल्युकस ने दाँत पीसकर कहा, "तू जा, मैं उसे बाँधकर तुझे उपहार में दूँगा···" और उसने दाएँ हाथ से संकेत किया। यवन सेना में युद्ध के बाजे बज उठे।

ठीक उसी समय चन्द्रगुप्त का शंख गरज उठा।

फिर भूकम्प-सा आ गया और जैसे समुद्र की प्रचण्ड लहरें थपेड़े लेने लगीं। उनके गर्जन से धरती थरथर काँपने लगी।

यवन सेना को भारतीय व्यूहों में फँसाकर यवन कौशल से काटा जाने लगा। इस अद्भुत युद्ध के कारण सेल्युकस को काठ-सा मार गया।

आधी सेना कटा चुकने के बाद सेल्युकस निकेटर की आँखों पर पड़ा दिग्विजय के सपने का धुँधलका दूर हो गया।

हारे-थके मन से चन्द्रगुप्त के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजकर वह अपने एकान्त शिविर में बेहाल पड़ा रहा। राजकन्या हेलेन कोने में खड़ी विजेता को तड़पते देखती रही।

सन्धि हो गई।

विजेता सेल्युकस का सम्मान करने के लिए मगध-सम्राट् ने अनेक हाथी, रथ, घोड़े तथा मूल्यवान रत्न उपहार दिए।

और सेल्युकस ने अपने जीते हुए प्रदेश का बहुत बड़ा भाग मगध-सम्राट् को दिया। उनकी राजसभा में रहने के लिए मेगस्थनीज जैसे विद्वान इतिहासकार को राजदूत बनाकर भेजा। और अपनी रक्षा के लिए उसने एक अमूल्य रत्न भी दिया··· राजकन्या हेलेन को मगध-सम्राट् को सौंपते समय विजेता सेल्युकस की आँखें गीली हो आईं।

महामात्य राक्षस ने आशीर्वाद दिया, "पराक्रमी मौर्य-सम्राट् का कल्याण हो! आज भरत-खण्ड का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया है। यवनराज से मित्रता अमर हो।"

यवनों की सुन्दरी राजकन्या तथा मगध-सम्राट् के सिर पर दोनों हाथ फैलाकर कौटिल्य ने कहा, "तू वचन का धनी है, वृषल, तूने अतिथि को जीवन भर तक अपना दर्शन देने की प्रतिज्ञा पूरी की है। तेरा कल्याण हो!"

हेलेन उस अद्भुत कूटनीतिज्ञ की ओर आश्चर्य से देखती ही रह गई। सेल्युकस निकेटर का विजेता, शक्तिशाली मगध-सम्राट् भी उसके चरण छूता है। उसकी लाल-लाल आँखों का तेज वह सह न सकी। स्वयं भी उसके चरणों पर झुक पड़ी।

●●●

आधार

किसी भी ईमानदार कथा-शिल्पी के सामने इतिहास की अनेक जटिलताएँ आती हैं। उन्हें सुलझाए बिना निस्तार नहीं। काल का बहुत बड़ा व्यवधान लाँघकर युगविशेष में जीना कितना भी दुष्कर क्यों न हो, प्रमाणों को ठुकराने की छूट तो मिलने से रही। ऐसी कितनी ही जटिलताएँ प्रस्तुत उपन्यास की रचना करते समय भी आई हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख आवश्यक है।

एक जटिलता थी नवनन्दों की।

विभिन्न प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सम्राट् महापद्म नन्द मगध में नन्द-वंश के शासन का प्रतिष्ठापक था। इसके सम्बन्ध में कई रोचक कथाएँ प्रचलित हैं। पुराणों के अनुसार यह हर्यंक-वंश के अन्तिम राजा महानन्दिन का पुत्र था। इसकी माँ शूद्र थी। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'अशोकावदान' से ज्ञात होता है कि शिशुनाग-वंश का अन्तिम राजा काकवर्णिन था। उसकी जगह अन्य ग्रन्थों में कालाशोक का उल्लेख है। उसके गले में कटार भोंककर उसकी हत्या कर दी गई। उसके बाद महापद्म अधिकारी बन बैठा। विख्यात इतिहासकार कर्टियस लिखता है कि मगध की रानी एक नाई पर आसक्त हो गई। नाई ने काकवर्णिन की हत्या कर दी, साथ ही उसके छोटे-छोटे पुत्रों का भी वध करके राज्याधिकारी बन बैठा। इसी ने नन्द-वंश की स्थापना की। बौद्ध ग्रन्थ उसको उग्रसेन अर्थात् प्रचण्ड सेना-सम्पन्न कहते हैं। अपार धन का स्वामी होने के कारण उसे महापद्म अथवा महापद्मपति भी कहते थे। कुछ भी हो, पुराणों के अनुसार महापद्म नन्द महाप्रतापी था और उसने

प्रचण्ड ब्राह्मण योद्धा भार्गव परशुराम की भाँति क्षत्रियों को निर्वीर्य करके पृथ्वी पर निरंकुश शासन किया। परवर्ती युग में शुंगों के समकालीन बलशाली कलिंग-नरेश महामेघवाहन खारवेल के हाथीगुम्फा वाले लेख से विदित होता है कि नन्द ने कलिंग-विजय भी की थी और वहाँ से भगवान् जिनेश्वर की स्वर्ण-प्रतिमा उठा लाया था। कहा जाता है कि महापद्म के पश्चात् उसके आठ पुत्रों ने एक-एक करके शासन किया। इसी कारण उन्हें नवनन्द कहा गया।

नन्दों की शासन-अवधि निश्चित करना अपने-आप में जटिल समस्या है। पुराणों ने नन्दों की पूरी शासन-अवधि सौ वर्ष रखी है। जैन परम्परा के अनुसार मगध पर नन्द-वंश का शासन १५५ वर्ष रहा। कुछ परम्पराएँ १३८ वर्ष भी निश्चित करती हैं। सिंहली बौद्ध परम्परा के अनुसार नन्दों का शासन केवल २२ वर्ष रहा। पुराणों में परस्पर मतभेद है। कुछ पुराण महापद्म की शासन-अवधि ८८ वर्ष तथा उसके पुत्रों की अवधि केवल १२ वर्ष बताते हैं ; शेष पुराण महापद्म का राज्यकाल २८ वर्ष मानते हैं, और उसके पुत्रों की १२ वर्ष—हाँ नन्दों की पूरी अवधि ये भी १०० वर्ष ही मानते हैं। जैनों का उल्लेख १५५ वर्ष तथा अन्य परम्परा का १३८ वर्ष भी अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं। सिंहली बौद्ध परम्परा के बाईस वर्ष ही वास्तविक ज्ञात होते हैं, क्योंकि ऐतिहासिक तिथियों की गणना से भी यही प्रमाणित होता है कि नन्दों को मगध पर शासन करने का अवकाश बहुत कम ही मिला होगा।

किन्तु पहली दृष्टि में नन्दों का समूचा राज्यकाल केवल २२ वर्ष होना अविश्वसनीय जान पड़ता है। इतने कम समय में नौ राजाओं ने शासन कैसे किया ? इस प्रश्न पर विचार करने के पहले नन्द-वंश के नामों पर विचार करना आवश्यक है।

सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध का नन्द राजा ही चाणक्य का शत्रु भी था, यह प्रामाणिक है, क्योंकि इसी को अन्तिम नन्द माना गया है। यूनानियों के अनुसार उसका नाम अग्रमेस (Agrammes) अथवा क्सैण्ड्रमस (xandrames) था। ये नाम उग्रसेन के रूपान्तर जान पड़ते हैं। अपनी प्रचण्ड सेना के कारण ही उसे उग्रसेन कहा जाता था। इतिहासकारों के अनुसार उसकी सेना में २ लाख पदल, ८० हजार अश्वारोही, ८ हजार रथ तथा ६ हजार हाथी थे। कुछ नीम-हकीम इतिहासकार पता नहीं किस शास्त्र के आधार पर इन यूनानी नामों को 'औग्रसेन' पढ़कर चटपट स्थापित करते हैं कि यूनानियों के अनुसार यह राजा उग्रसेन का पुत्र था। विशाखदत्त के सुप्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद करते समय भारतेन्दु हरिश्चन्द ने बड़े श्रम से पूर्वकथा लिखी है। उसमें वह अन्तिम नन्द का नाम महानन्द मानते हैं। 'कथा-सरित्सागर' में इसी राजा का नाम सत्यनन्द है, जिसकी स्वाभाविक मृत्यु होती है, पर ब्राह्मण इन्द्रदत्त योगबल से उसके शव में प्रवेश करके उसे जीवित कर देता है। तब से उसका नाम योगानन्द हो जाता है। इतिहास के श्रेष्ठ विद्वान आर० सी० मजूमदार, एच० सी० रायचौधुरी तथा कालीकिंकर दत्त उसका नाम धननन्द मानते हैं। मुझे लगता है कि और खोजने पर कम-से-कम नौ नाम पूरे हो जाएँगे।

उपर्युक्त विवरणों से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उभरते हैं। एक ओर तो नन्द-वंश का राज्यकाल केवल २२ वर्ष ही सही लगता है, दूसरी ओर प्रथम एवं अन्तिम नन्द अपार वैभवशाली, प्रतापी तथा प्रचण्ड सेना-सम्पन्न भी दिखाई पड़ते हैं।

बाईस वर्षों में नौ नन्दों के हाथों पड़कर शासन-सूत्र निर्बल हो जाता, इसमें सन्देह नहीं, ऐसी स्थिति में नन्दों का चमत्कारिक

बल-वैभव असम्भव-सा लगता है। अन्य अनेक कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुतः समूचे वंश की शासन-अवधि तक मगध एक ही व्यक्ति के अधीन रहा। इस धारणा के कई ठोस प्रमाण भी हैं—

○ 'नवनन्द' शब्द का अर्थ अब भी निश्चित नहीं हो सका है। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि 'नवनन्द' शब्द क्षेमेन्द्र द्वारा उल्लिखित 'पूर्वनन्द' के वंशजों के लिए वंश-नाम के लिए प्रयुक्त हुआ है और उसका अर्थ है 'नए नन्द'। किन्तु कुछ विद्वान 'नव' का अर्थ संख्या ९ के लिए मानते हैं।

○ प्रथम और अन्तिम नन्दों को छोड़कर शेष सातों नन्दों के नाम अज्ञात हैं, अर्थात् यदि उनका अस्तित्व रहा भी हो तो सत्ता की दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं था।

○ सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है प्रथम और अन्तिम शासकों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक परम्पराओं में साम्य। 'महापद्म' नाम वास्तविक नाम नहीं है, अपार वैभव का स्वामी होने के कारण सार्थक उपाधि के रूप में प्रस्तुत है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रचण्ड सेना के कारण 'उग्रसेन'। और अन्तिम राजा धननन्द के सम्बन्ध में भी धन के लोभी होने की परम्परा प्रचलित है। 'कथा-सरित्सागर' में भी इसका संकेत मिल जाता है। धननन्द नाम भी वास्तविक नहीं, उग्रसेन की भाँति ही सार्थक उपनाम और महापद्मपति की ही समानान्तर अभिव्यक्ति है। यूनानी इसी को उग्रसेन कहते हैं।

○ पराक्रम, विजय तथा सैन्य-शक्ति की दृष्टि से तो स्पष्ट साम्य है ही।

○ परम्परा में अन्तिम शासक का एक नाम महानन्द भी है।

ये समताएँ समूचे ऐतिहासिक सन्दर्भ में किसी एक व्यक्ति की विशेषता के ही रूप में उभरती हैं और यह मानने को विवश

करती हैं कि दोनों शासक वस्तुतः एक ही व्यक्ति हैं। महा-पद्मनन्द, महानन्द एवं धननन्द एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम हैं। उग्रसेन प्रचण्ड सेना के कारण उसी के लिए व्यवहृत होता रहा है। नवनन्दों की संकीर्ण राज्य-अवधि की समस्या भी इस आधार पर सहज ही सुलझ जाती है। वस्तुतः महापद्म ने अपने पुत्रों को युवक होने पर शासन के विभिन्न कार्य सौंपे होंगे। हो सकता है कि उन्हें विभिन्न खण्डों का गोप्ता अथवा शासक नियुक्त किया हो। ऐसी व्यवस्था सम्भवतः उसने चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा नन्द-वंश के 'समूल विनाश' की तिथि से कोई बारह वर्ष पूर्व की होगी। यही अवधि उसके पुत्रों की शासन-अवधि है। यह मान्यता निराधार नहीं है। भारत के राजनीतिक इतिहास में ऐसी व्यवस्था की परम्परा रही है और उसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

शकटार एवं राक्षस जैसे नीतिकुशल मन्त्रियों तथा आठ-आठ पुत्रों की सहायता से महापद्म नन्द अपार शक्ति-सम्पन्न तथा वैभवशाली बन गया। निरंकुश, विलासी तथा लोभी होने के कारण प्रजा बाद में चलकर उससे असन्तुष्ट हो गई थी। इसका लाभ उठाकर चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने अपने स्वप्न पूरे करने का निश्चय किया। राजा के साथ-साथ उसके आठों समर्थ पुत्रों का वध किए बिना चाणक्य कृतकार्य नहीं हो सकता था। उतने पर भी वह तुरन्त मगध पर अधिकार जमाने में असफल ही रहा। राक्षस ने नन्दराज के भाई सर्वार्थसिद्धि को खोज ही निकाला था।

इन तथ्यों से सिद्ध हो जाता है कि सिकन्दर का समकालीन और चाणक्य का शत्रु महापद्म नन्द उग्रसेन ही था।

दूसरी जटिलता थी चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में। कुछ विद्वान उसे भी शूद्र ही मानते हैं। यद्यपि किसी भी व्यक्तित्व के

लिए जाति का कोई महत्व नहीं, किन्तु इतिहास के तथ्यों की दृष्टि से चन्द्रगुप्त की जाति की समस्या आती ही है। उसका एक प्रामाणिक उत्तर आवश्यक है।

विचित्र बात है कि चन्द्रगुप्त और महापद्म दोनों के बारे में एक जैसी किंवदन्ती प्रचलित है। चन्द्रगुप्त को भी महापद्म नन्द का नाइन मुरा से उत्पन्न पुत्र माना जाता है। वैसे भी महापद्म का नवाँ पुत्र माना जाए तो चन्द्रगुप्त शूद्र अथवा अर्धशूद्र ठहरता है। इसके पक्ष में प्रायः दो तर्क सामने आते हैं। एक यह कि चन्द्रगुप्त के साथ मौर्य इसलिए जुड़ गया कि वह मुरा का पुत्र था। दूसरे उसके लिए 'वृषल' शब्द भी प्रयुक्त होता रहा है। 'वृषल' शब्द शूद्रों के लिए रूढ़ हो गया है।

किन्तु बहुत पुराने बौद्ध उल्लेखों से विदित होता है कि 'मौर्य' शूर्यवंशी क्षत्रिय थे। वे लोग पिप्पलीवन में छोटे से गण पर शासन करते थे। उनके सम्बन्ध में एक परम्परा यह भी है कि गौतम बुद्ध के समकालीन कोसल-नरेश प्रसेनजित के दबाव से शाक्यों ने उसके साथ एक दासीपुत्री 'वासभा खत्तिया' को शाक्य दुहिता कहकर विवाह दिया। बाद में यह भेद खुलने पर वासभा का पुत्र विडूडभ अपमानित हुआ। कोसल का राजा बनने के बाद विडूडभ ने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया। बुद्ध ने उसे समझा-बुझाकर दो बार तो रोक लिया, किन्तु तीसरी बार उसने शाक्यों का भीषण नर-संहार किया। उससे बचकर शाक्यों का एक समुदाय पिप्पलीवन की ओर चला गया था। वहाँ के वन में मयूर पक्षियों की भरमार थी, इसी कारण बाद में वे अपने को मौर्य कहने लगे। चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में प्रचलित अन्य परम्पराओं से भी ज्ञात होता है कि उसका पालन-पोपण मोर पालनेवाले जंगली लोगों के बीच हुआ था और उसने बाद में चलकर आटविकों की एक सेना भी बनाई थी।

'वृषल' शब्द के कारण उसे शूद्र कहना भी तर्कसंगत नहीं। वृषल का अर्थ शूद्र ही नहीं, उसका प्रयोग 'महान्' के पर्याय के रूप में भी होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक को 'देवानांप्रिय' कहा जाता था, यद्यपि देवानांप्रिय का एक अर्थ है 'मूर्ख'। मुद्राराक्षस के एक श्लोक का पद है—'वृषलेन वृषेण राज्ञाम्,' इसमें चन्द्रगुप्त को 'राजाओं में वृष' कहा गया है, ठीक वैसे ही जैसे 'राजाओं में सिंह'। वृष अर्थात् बैल शब्द का प्रयोग श्रेष्ठता के द्योतक के रूप में होता ही रहा है। नर-ऋषभ भी ऐसा ही प्रयोग है जो राम, कृष्ण आदि के साथ भी प्रचलित है। 'मौर्य' शब्द को 'मुरा' से जोड़ देना ही चन्द्रगुप्त को शूद्र कहने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि मौर्यों की पूरी वंश-परम्परा में परवर्ती काल में भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिसमें उनकी 'शूद्रता' की ओर इंगित हो।

उस विशेष युग-सन्दर्भ में चाणक्य यदि 'बुद्धि' है, जो समस्त परिवेश को सँचालित करता-सा प्रतीत होता है, तो चन्द्रगुप्त 'शरीर' है, जो बुद्धि के इंगितों को कार्यान्वित करता है। इन दोनों का संयोग ही सफल पूर्णत्व है।

चाणक्य की हर चेष्टा एक सुदृढ़ साम्राज्य के निर्माण की ओर प्रवृत्त है। साम्राज्यवाद आज निश्चयतः अभिशाप है, किन्तु कौटिल्य के युग में वही प्रगति है। चाणक्य मात्र कोपी तथा प्रतिशोध का भूखा ब्राह्मण नहीं है, प्रतिहिंसा की बौखलाहट में वह विनाश को लक्ष्य बनाकर नहीं चलता, वरन् रूढ़ियों में फँसकर छटपटाते युग को निकालकर वह अपनी सीमाओं में एक नई व्यवस्था स्थापित करता है। लोक-कल्याण के लिए वह एक ओर नन्द-वंश, पर्वतक आदि के वध को अनिवार्य मानता है तथा दूसरी ओर अकेले राक्षस को जीवित बचाए रखने के लिए कितने ही संकट उठाता है। कूटनीति की चाल पर चाल चलता

है, उसके चारों ओर सैकड़ों गुप्तचरों का जाल बिछा देता है, यद्यपि वह चाहता तो किसी भी क्षण राक्षस को अपने रास्ते से उठाकर गर्त में फेंक सकता था। इसी कारण मेरा चाणक्य कहता है—'विनाश से निर्माण कठिन है···मैं धरती पर एक ऐसा शासन चाहता हूँ, जिससे प्रजा को अधिक-से-अधिक सुख मिले। उसे जो चला सके वही राजा है। कौन जाने, सम्भवतः उससे भी अच्छे मार्ग हों, पर मैं जो जानता हूँ, वही कर रहा हूँ।'

प्रस्तुत उपन्यास के स्थान-काल तथा व्यक्ति-सन्दर्भों पर विशेष कुछ कहना अभीष्ट नहीं है। कथानक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक चित्रणों के लिए मैंने कल्पना को प्रेरणा नहीं बनने दिया है, तथ्यों से प्रेरित होने पर ही कल्पना की है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि स्वयं चाणक्य, चन्द्रगुप्त, महापद्म नन्द आदि ऐतिहासिक चरित्र जितने वास्तविक हैं, मेरे काल्पनिक पात्र ब्राह्मण जीव, गुप्तचर बल एवं विजया भी उतने ही वास्तविक हैं—मैंने उनका नामकरण मात्र किया है।

—सुशील कुमार